# स्वायत्त मानव

## मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वांग्मय से एक संकलन

Version 3

११ नवंबर २०१९

श्रद्धेय श्री ए. नागराज जी द्वारा प्रणेत मध्यस्थ दर्शन (सह अस्तित्ववाद) में से शब्दों के संदर्भों के खोजने के क्रम में यह "स्वायत्त मानव" शब्द के संदर्भों का संकलन है। यदि यहाँ लिखे हुए और मध्यस्थ दर्शन के मूल वाङ्ग्मय में कोई अंतर मिले तो मूल वाङ्ग्मय को ही सही माना जाए। यहाँ लिखे हुए में त्रुटियों के सुधार और इसको और उपयोगी बनाने हेतु भागीदारी करने के लिए रोशनी साहू (sahuroshani@gmail.com) से संपर्क करें।

| | | |
|---|---|---|
| Version 0.1 | Draft version created | Roshani Sahu, 17/09/2017 |
| Version 0.2 | Draft version created | Roshani Sahu, 11/05/2018 |
| Version 0.3 | Draft version created | Roshani Sahu, 11/11/2019 |

## अनुक्रमणिका

"स्वायत्त मानव" शब्द को लेकर मध्यस्थ दर्शन वांग्मय में आये सन्दर्भों को निम्न क्रम से संकलित किया गया है.


| | | |
|---|---|---|
| 1. | मानव व्यवहार दर्शन | ४ |
| 2. | मानव कर्म दर्शन | ५ |
| 3. | मानव अभ्यास दर्शन | ५ |
| 4. | मानव अनुभव दर्शन | ५ |
| 5. | समाधानात्मक भौतिकवाद | ६ |
| 6. | व्यवहारात्मक जनवाद | ८ |
| 7. | अनुभवात्मक अध्यात्मवाद | ९ |
| 8. | व्यवहारवादी समाजशास्त्र | १९ |
| 9. | आवर्तनशील अर्थशास्त्र | ४१ |
| 10. | मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान | ५४ |
| 11. | मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या | ५६ |
| 12. | जीवन विद्या – एक परिचय | ५७ |
| 13. | विकल्प एवं अध्ययन बिन्दु | ६२ |
| 14. | मानवीय आचरण सूत्र | ६३ |
| 15. | संवाद भाग– 1 | ६४ |
| 16. | संवाद भाग–2 | ६४ |

# सन्दर्भ : मानव व्यवहार दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2015)

- चित्त जब बुद्धि का संकेत ग्रहण करने योग्य विकसित हो जाता है तब संतोष की अनुभूति होती है. फलस्वरूप **स्वायत्त मानव** जीवन में जागृति का प्रादुर्भाव होता है अर्थात मानव स्व–तंत्रित होता है.
  ऐसे स्वतन्त्र मानव में अधिक उत्पादन, कम उपभोग तथा अपव्यय का अत्याभाव होता है और वह अधिकाधिक जागृति के लिए प्रेरणास्त्रोत होता है. मानव में स्वतंत्रता की तृषा पाई ही जाती है. (**अध्याय:17, पेज नंबर:143**)

- विकास और जागृति सम्पूर्ण सृष्टि का लक्ष्य है तथा सृष्टि में प्रत्येक जड़ इकाई की चेष्टा विकास–क्रम व विकास रूप में ही है. सृष्टि में इकाई के स्वतन्त्र अस्तित्व का दर्शन नहीं होता. प्रत्येक इकाई वातावरण के दबाव से क्षुब्ध होकर स्वतंत्र होने के प्रयास में है, से प्रेरित रहता ही है। सृष्टि, जड़ एवं चैतन्य, दो स्वरूप में है। जड़ अपने 'त्व' सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी रूप में है। जिसका दृष्टा मानव है। चैतन्य सृष्टि में मानव इकाई के जागृति पूर्वक स्वतन्त्र (**स्वायत्त**) होने की व्यवस्था है। यहाँ स्वतंत्रता का मतलब सबसे अलग होने से नहीं है, फिर स्वतंत्रता का क्या अर्थ है? स्वतंत्रता का अर्थ है, अपने को वातावरण के दबाव से मुक्त कर लेना तथा सह–अस्तित्व सहज व्यवस्था में संगीतमय रूप में प्रमाणित करना। मानव इकाई में इसकी पूर्ण संभावनाएं हैं तथा जागृत मानव ने स्वतंत्रता की अनुभूति भी की है। (**अध्याय:16, पेज नंबर:113**)

## सन्दर्भ : मानव कर्म दर्शन

( संस्करण: 2010, मुद्रण:2017)

- स्वायत्त मानव शब्द प्राप्त नहीं हुआ।

## सन्दर्भ : मानव अभ्यास दर्शन

(संस्करण: द्वितीय, मुद्रण: 2010)

- स्वायत्त मानव शब्द प्राप्त नहीं हुआ।

## सन्दर्भ : मानव अनुभव दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2016)

- स्वायत्त मानव शब्द प्राप्त नहीं हुआ।

# सन्दर्भ: समाधानात्मक भौतिकवाद

(संस्करण: 2009)

- समाधान:– राज्य के साथ समाज और धर्म अविभाज्य वर्तमान है। धर्म के साथ समाज और राज्य अविभाज्य वर्तमान है। समाज के साथ राज्य और धर्म अविभाज्य वर्तमान है। मानव धर्म का मूल रूप में सर्वतोमुखी समाधान है, इसके लिए मानव परंपरा में परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था प्रस्तावित है। जिसका फलन समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व सहज प्रमाण है। राज्य, समाज और धर्म अलग अलग नहीं हो पाते। भाषा के रूप में कई तरीके से बात कर सकते हैं पर होता है वही जो अस्तित्व में है। अस्तित्व में मानव का होना, पहले स्पष्ट हो चुका है। **मानव का स्वरूप स्वायत्त रूप में**, परिवार के रूप में, ग्राम व विश्व परिवार के रूप में पहचान सकते हैं। मूलत: मानव की पहचान अर्थात् व्यक्ति की पहचान पहले कर लें अथवा विश्व मानव को पहले पहचान लें। इनकी पहचान से यह पता चलता हैं कि सर्वप्रथम एक समझदार मानव को पहचानना अति अनिवार्य है। यह भी समझ में आता हैं कि प्रत्येक मानव आकार के रूप में विविध है। मानव को पहचानने का आधार क्या होगा? यह प्रश्न स्वाभाविक रूप में विचारशील व्यक्तियों में उपजता ही है। इसका उत्तर खोजने पर पता चलता है कि हर वस्तु की पहचान उस–उस के आचरण पर ही निर्भर हैं। आचरणों को योग, संयोग, वियोग के आधारों पर पहचाना जाता है। एक दूसरे का मिलन, योग हैं। पूर्णता के अर्थ में सार्थक योग, संयोग हैं। वियोग वह है कि योग और संयोग पहले से थी उससे छूट गए। इस प्रकार वियोगात्मक आचरण के आधार पर कोई समाज रचना नहीं होती है। अब संयोग और योग की बात आता है। अभी तक जो कुछ भी आदमी, परिवार और समुदाय के रूप में दिख रहा है, ये सब योग के रूप में ही दिख रहा है, संयोग के रूप में नहीं। योग से कम स्थिति में अर्थात् वियोग की स्थिति में मानव स्पष्ट नहीं हो पाता है। कम से कम योग के आधार पर ही आचरणों को पहचानना संभव हो पाता हैं। इन्हीं आधारभूत तथ्यों के आधार पर परीक्षण संभव हो पाता है। मूलत: मानवीयतापूर्ण आचरण में सार्वभौम रूप स्पष्ट है। (**अध्याय:8, पेज नंबर:176–177**)
- मानवीय आचरण, उसकी सार्वभौमिकता के कार्य रूप को, सार्वभौम व्यवस्था के आधार पर ही देख पाना संभव हो पाता है, यही मुख्य मुद्दे की बात है। अभी तक यह मुद्दा अनुसंधान के गर्त में रहा है, अब इसके मानव सुलभ होने की संभावना बन चुकी है। ऐसी सार्वभौम व्यवस्था को अनुसंधान के उपरान्त ही सार्वभौम आचरण के परीक्षण के लिए, आपका ध्यान आकर्षित किया जा रहा है। सार्वभौम व्यवस्था को ऐसा समझा गया है कि मानव को परिवार मानव, ग्राम परिवार मानव, विश्व परिवार मानव के रूप में पहचाना जा सकता है। प्रधान बात यही है कि, परिवार में ही मानव की पहचान व प्रमाण होता है। परिवार कम से कम दो, या दो से अधिक व्यक्तियों के होते हैं। मूलत: विश्व परिवार ही अखण्ड समाज के रूप में ख्यात होता हैं। विश्व परिवार व्यवस्था ही परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था के रूप में प्रमाणित हो पाता है। अतएव मानव को परिवार में पहचानने के पहले मानव की परिभाषा आवश्यक हो जाती है, जिसके आधार पर ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था व्याख्यायित होती हैं। मानव की परिभाषा, मानव के यथास्थिति अध्ययन से ही प्रमाणित होती हैं जैसे– ''मनाकार को साकार करने वाला, मन: स्वस्थता (सुख) का आशावादी एवं प्रमाणित करने वाला मानव है।" हर मानव परिभाषा सहज व्याख्या के रूप में प्रमाणित होने के लिए **स्वायत्त** और मानवीयतापूर्ण आचरण संपन्न होना है। इस प्रकार से मनाकार को साकार करने को, प्रमाणों को

सामान्य आकांक्षा अर्थात् आवास, आहार एवं अलंकार संबंधी वस्तुओं और उपकरणों, तथा महत्वाकांक्षा अर्थात् दूरदर्शन, दूरश्रवण, दूरगमन संबंधी वस्तुओं और उपकरणों को साकार करने के रूप में देखा गया है। मन: स्वस्थता अर्थात् समाधानापेक्षा एवं प्रमाणित करने वाला का आशावादी होना, सहज होते हुए भी, परम्परा में प्रमाण के रूप में स्पष्ट नहीं हो पाया है। यद्यपि हर व्यक्ति सुख, शांति, संतोष और आनंद की अपेक्षा रखता ही है। यही मन: स्वस्थता का आशावादी होने का गवाही हैं। **(अध्याय:8, पेज नंबर:177–178)**

- परिवार मूलक स्वराज्य, समझदारी मूलक **स्वायत्त मानव** परिवार है। समझदारी की संपूर्णता ही जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन एवम् मानवीयतापूर्ण आचरण है। व्यवस्था के क्रियान्वयन करने के मूल में, प्रत्येक परिवार को जीवन विद्या में पारंगत बनाने की व्यवस्था रहेगी।  जीवन विद्या का विस्तृत कार्य, प्रयोजन, संभावना, सुलभता के संबंध में ''अस्तित्व में परमाणु का विकास"– अध्याय में स्पष्ट है। ''अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन" के रूप में ''मध्यस्थ दर्शन, सह–अस्तित्ववाद" है। इसमें अस्तित्व दर्शन को विविध प्रकार से स्पष्ट किया गया है। **(अध्याय:8, पेज नंबर:182)**
- जागृत मानव अपने तन, मन, धन रूपी अर्थ को आगे पीढ़ी, पीछे पीढ़ी के साथ वर्तमान दायित्व एवं कर्त्तव्य पूर्वक अर्पित, समर्पित कर सदुपयोग पूर्वक सुख को पा लेता हैं। फलस्वरूप उस–उस की सुरक्षा होना प्रमाणित होता है। उपयोग:– **स्वायत्त मानव** सहज परिवार में तन, मन, धन रूपी अर्थ का उपयोग मूल्य और मूल्यांकन पूर्वक उभय तृप्ति।

  सदुपयोग:– परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी करते हुए तन, मन, धन रूपी अर्थ का नियोजन सदुपयोग हैं।

  प्रयोजनशीलता:– जागृतिपूर्ण विधि से प्रमाणित करने में नियोजित किया गया तन, मन, धन रूपी अर्थ।

  सदुपयोग पूर्वक सुख उनको मिलता हैं जो अपने तन, मन, धन को विकास और जागृति, कर्तव्य और दायित्वों के लिए अर्पित करते हैं जिसके लिए अर्पित हुआ, उसकी सुरक्षा, जागृति और विकास के अर्थ में संपन्न हुई। यही पूरकता विधि हैं। **(अध्याय:9–10, पेज नंबर:314–315)**

# सन्दर्भ : व्यवहारात्मक जनवाद

(संस्करण: 2009, मुद्रण: 2017)

- व्यवस्था की पॉचवी कड़ी स्वास्थ्य–संयम का मतलब मानसिक रूप में संतुलित रहने का तौर तरीका, इसका ध्रुव बिन्दु स्वस्थ मानसिकता को सटीक प्रमाणित करने के रूप में पहचाना जाता है। जहाँ कहीं भी असंतुलन दिखने पर उसको संतुलित करने की व्यवस्था रहेगी। इसमें वन औषधियो का, घरेलू औषधियों का और बनी हुई औषधियों का उपयोग करना रहेगा। साथ में स्थानीय रूप में मिलने वाली औषधियों को निर्माण करने की व्यवस्था रहेगी। व्यायाम, आसन, प्राणायाम, खेल के रूप में सभी का स्वास्थ्य सन्तुलन की संभावना प्रावधानित रहेगा। उक्त प्रकार के पाँच कड़ियों के संचालन के लिए आवश्यक तंत्र के रूप में पाँच समितियों को मनोनीत किया जायेगा। यह अधिकार ग्राम सभा में निहित रहेगा। अब रहा समितियों में संख्या का प्रश्न, यह स्थानीय सभा के विचाराधीन रहेगा। मनोनीत सदस्य **स्वायत्त परिवार** के हो सकते हैं। उपकार विधि से ही पूरा ग्राम स्वराज्य व्यवस्था सम्पादित रहना समझदारी का प्रमाण है। यही ग्राम स्वराज्य वैभव का तृतीय सोपान है।

  (अध्याय:7, पेज नंबर:116–117)

# सन्दर्भ : अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

(संस्करण:2009)

- ....अनुभवमूलक प्रणाली–पद्धति स्वस्थ–सुंदर समाधान पूर्ण नीतिपूर्वक यह देखा गया है कि –
  (1) समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व, यह सर्वशुभ है। यह सर्वमानव में, से, के लिये नित्य अपेक्षा है। इसके लिये मानव प्रयोग, अनुसंधान, शोध में कार्यरत रहा आया।

  (2) जीवन सहज शुभ सुख, शांति, संतोष, आनन्द है। ऐसे मानव सहज, शुभ गति, मानवीयता पूर्ण आचरण है। प्रत्येक व्यक्ति में शुभ, सुन्दर, समाधान रूप ही '**स्वायत्त मानव**' है। समग्र परिवार शुभ ही चाहते हैं जो पुनः समाधान समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व है। यही अखण्ड समाज का सूत्र और व्याख्या है। यह अनुभवमूलक विधि से ही प्रमाणित होता है। अस्तित्व सहज सह– अस्तित्व 'त्व' सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी क्रम में परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था ही है। सह–अस्तित्व वर्तमान में विश्वास, समाधान, समृद्धि यह अनुभव का ही स्वरूप है। अनुभव करने योग्य वस्तु जीवन है। **(अध्याय:2, पेज नंबर: 20)**

- उत्पादन सुलभता अर्थात् परिवार में जितने भी परिवार मानव रहते हैं उन सबकी आवश्यकता से अधिक उत्पादन कार्य होना परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था क्रम में सहज और सुलभ है। इस विधि से हर परिवार समृद्ध होने सहज समीचीनता सुलभ रहता ही है। इसी के साथ श्रम मूल्य के आधार पर विनिमय प्रणाली सर्वसुलभ होता ही है। इस विधि से लाभ–हानि मुक्त विनिमय सम्पन्न होना सहज है। फलस्वरूप लाभ से होने वाली अहम्ता (अहंकार) और हानि से होने वाली पीड़ा से मुक्त होना स्वाभाविक रहता ही है। समाधान, समृद्धि, शांति और सुख का सूत्र होना और न्याय सुलभता के साथ ही वर्तमान में विश्वास होना देखा गया है। बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक यह प्रणाली मानव कुल में प्रभावी नहीं हुई है। इस स्थिति में भी यह अनुभव किया गया है **स्वायत्त** विधि से किया गया उत्पादन कार्य से समृद्धि का और सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति विधि से न्याय का प्रमाण हमें सुलभ हो चुका है। अब रहा विनिमय प्रणाली अभी तक प्रचलित लाभोन्मादी के अंतर्गत ही हम लेन–देन जैसा उत्पादन और विनिमय मुद्रा के आधार पर करते हुए भी समृद्धि का अनुभव किया। इसलिये और कहा जा सकता है कि लाभ–हानि मुक्त विनिमय प्रणाली प्रत्येक परिवार में, से, के लिये शांति कारक सूत्र होना देखा गया।
  स्वास्थ्य–संयम जागृति विधि से अर्थात् अनुभव विधि से **स्वायत्त** होना सहज है। सम्बन्ध–मूल्य–मूल्यांकन–उभय तृप्तिकारी मानसिकता स्वयं का प्रमाण है और स्वास्थ्य समाधान, सह–अस्तित्व, वर्तमान में विश्वास, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन–कार्य, न्याय–सुरक्षा में भागीदारी उसकी निरंतरता को बनाये रखने योग्य शरीर को संतुलित किये रहना **स्वायत्तता** के रूप में हर व्यक्ति में प्रमाणित होना समीचीन है। जीवन जागृति को मानव परंपरा में प्रमाणित करने के लिये शरीर की आवश्यकता और इसका उपयोग, सदुपयोग और प्रयोजनों के सम्बन्ध में हर व्यक्ति जागृत रहना आवश्यक होना है क्योंकि अनुभव की महिमा जागृति ही है। इसी सत्यतावश मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कारपूर्वक ही अथवा सुलभता से ही **स्वायत्तता** अपने आप संस्कारित होना पाया जाता है। **स्वायत्त मानव** ही परिवार मानव होना, परिवार मानव ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का धारक–वाहक होना, अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था ही मानव में, से, के लिये परम सौभाग्य स्थिति, गति

होना, फलस्वरूप मानव सहज सर्वशुभ, जीवन सहज नित्य शुभ, हर मानव में, से, के लिये प्रमाणित होता है। **(अध्याय:2, पेज नंबर:39–40)**

- जागृति विधि से ही संग्रह, सुविधा, पूंजी पर अधिकार की निरर्थकता स्पष्ट होती है और आकाश, खनिज, वन, समुद्र धरती पर अधिकार कल्पनाएँ भ्रामक सिद्ध हो जाती हैं। इसी क्रम में शरीर व्यापार, ज्ञान व्यापार, धर्म व्यापार, विचार व्यापार, मानव का व्यापार, बौद्धिक सम्पदा का व्यापार सम्बन्धी सभी प्रयास, प्रक्रिया, परिणाम का व्यर्थता हर मानव को समझ में आता है। यही अनुभव और जागृति सहज महिमा है। ऐसी जागृति का पहला प्रमाण **स्वायत्त मानव** ही होना देखा गया है। **(अध्याय:2, पेज नंबर: 40)**
- **स्वायत्त मानव** का प्रमाण रूप मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार ही है। इसकी महिमा को स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन और व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वालंबन है। ऐसे **स्वायत्त मानव** ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। हर परिवार मानव परस्परता में सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन और उभय तृप्ति को पाना देखा गया है। परिवार मानव ही परिवार सहज आवश्यकता के अनुसार अपनाया गया उत्पादन कार्य में एक दूसरे के पूरक होते हैं, भागीदारी का निर्वाह करते हैं, फलस्वरूप परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन होना देखा गया है। यही समृद्धि, समाधान, न्याय सूत्र होना देखा जाता है। परिवार में समाधान और समृद्धि सम्बन्धों के आधार पर पाये गये उभय तृप्ति सहज न्यायपूर्वक व्यवस्था में जीना सहज होता हुआ देखा गया है। इन्हीं सहजता की पुष्टि में आवश्यकता से अधिक उत्पादन समृद्धि को प्रमाणित कर देता है। व्यवस्था में जीना ही समाधान का प्रमाण है और वर्तमान में विश्वास है। अतएव **स्वायत्त मानव** स्वरूप अनुभव मूलक होना देखा गया है। फलस्वरूप परिवार मानव, समाज मानव और व्यवस्था मानव के रूप में होना नियति सहज अभ्युदय (सर्वतोमुखी समाधान) और प्रामाणिकता (अनुभव और पूर्ण जागृति) सहज मानव में सार्थक होना देखा गया है। इसी आधार पर यह "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" लोक मानस के लिये प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत है। मानव ही ज्ञानावस्था की इकाई होने के कारण जागृति और सर्वतोमुखी समाधान को स्वीकारता ही है। यह अनुभव मूलक विधि से ही सर्वसुलभ होता है। ऐसे अनुभव और जागृति विधि से ही इस धरती को सुरक्षित बनाये रखने में मानव की भागीदारी अपेक्षा रूप में स्वीकार हो चुकी है।**(अध्याय:2, पेज नंबर:40–41)**
- मानवत्व के रूप में प्रमाणित होने के लिये मानवीयतापूर्ण स्वभाव यथा धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा सहज विधि से पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणा और जागृतिपूर्वक प्रमाणित होने में प्रवृत्ति सहित न्याय, धर्म, सत्य को प्रामाणिकता के रूप में प्रस्तुत करना/होना ही, मानवीयतापूर्ण मानव का स्वरूप है। दूसरे विधि से **स्वायत्त मानव**, परिवार मानव और अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करता हुआ स्थिति में, गति में, मानवीयता का वैभव अखण्ड, सार्वभौम, अक्षुण्ण प्रतिष्ठा के रूप में देखने को मिलता है। तीसरे विधि में मानवीयतापूर्ण मानव मानव का परिभाषा–सहज सार्थकता को प्रमाणित करने वाला है। यह समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व के रूप में प्रमाणित करना होता है क्योंकि मानव का परिभाषा "मनाकार को साकार करने वाला मन:स्वस्थता का आशावादी और इसे प्रमाणित करने वाला है।" इसीलिये व्यवहार में सामाजिक, फलत: सर्वतोमुखी समाधान, व्यवसाय में स्वावलंबन जिसका प्रमाण परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन से समृद्धि होना पाया जाता है। इस प्रकार हर परिवार समाधान, समृद्धिपूर्वक प्रमाणित होना मानवत्व का प्रमाण है।

इसी विधि से हर परिवार का जीना ही इसका लोकव्यापीकरण है। यही अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था है।(**अध्याय:3, पेज नंबर:54–55**)

- परंपरा अपने में पीढ़ी से पीढ़ी के लिए सूत्र है ही–भले ही समुदाय विधि से हो या अखण्ड समाज विधि से हो। अखण्ड समाज विधि जागृति का द्योतक है एवं समुदाय विधि भ्रम का द्योतक है यह स्पष्ट है। समुदाय विधि से मानव **स्वायत्त** होना नहीं हो पाता है पराधीनता बना ही रहता है। अखण्ड समाज विधि से ही मानव में **स्वायत्तता** परंपरा शिक्षा–संस्कार विधि से संपन्न होता है। इसका प्रमाण अर्थात् **स्वायत्तता** का प्रमाण परिवार में होना देखा गया। परिवार मानव में सह–अस्तित्व सूत्र से **स्वायत्तता** का प्रमाण सिद्ध हो जाता है। यह प्रचलित होने के लिये परंपरा की आवश्यकता है। दूसरे भाषा से सर्वसुलभ होने के लिए अथवा लोक व्यापीकरण होने के लिए परंपरा की आवश्यकता है। (**अध्याय:3, पेज नंबर:64**)
- जागृतिपूर्ण जीवन चित्रण में यह तथ्य सुस्पष्ट है कि न्याय, धर्म, सत्य उसका साक्षात्कार, बोध, अनुभव ही अध्ययन और अनुसंधान का लक्ष्य और कार्य है। इन्हीं कार्य रूप के आधार पर अस्तित्व और जीवन अवधारणा में स्थापित होना सफल अध्ययन का द्योतक और कसौटी भी है। इसी के आधार पर **स्वायत्त मानव** का सर्वेक्षण, निरीक्षण और परीक्षण होना स्पष्ट हो जाता है। **स्वायत्त मानव** ही अस्तित्व में अनुभव सहज जागृति का धारक–वाहक होना स्पष्ट है। इस प्रकार अध्ययन सहज रूप में जीवन और सह–अस्तित्व में अनुभव बोध की अभिव्यक्ति और प्रमणित होने के क्रम में आत्मा अस्तित्व में अनुभूत होना, जीवन में केन्द्रीय होना, मध्यस्थ क्रिया और मध्यस्थ बल सम्पन्नता का स्वीकृत होना, परम तृप्त होना है। जीवन रचना मध्यांश सहज मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ बल, मध्यस्थ शक्ति संतुलन के अर्थ में सदा–सदा प्रयुक्त रहता ही है। यही जागृत मानव परंपरा में प्रमाण है। मध्यस्थ क्रिया सम्मुच्चय क्रम से जीवनी क्रम और जीवन जागृति क्रम व्यक्त होता है। इसी क्रम में जागृत होना जीवन सहज प्रवृत्ति, प्रयास, आवश्यकता के योग–संयोग विधि से सम्पन्न होता है। यही अनुसंधान शोध और अध्ययन के लिए भी संयोजक तत्व है। यह तत्व सदा–सदा जीवन प्रतिष्ठा में कार्यरत रहता ही है। इसकी प्रखरता के आधार पर ही अनुसंधान, शोध, अध्ययन सहज हो जाता है। इस प्रकार यह सुस्पष्ट हो जाता है कि आत्मा अध्ययन विधि से अस्तित्व में अनुभूत होता है। दूसरा, अनुसंधान विधि से भी अस्तित्व में अनुभूत होना पाया जाता है। (**अध्याय:4, पेज नंबर:84–85**)
- 6. जो बन्धन था, मुक्ति पाने के बाद उसका प्रयोजन क्या है ?

  जीवन जागृति अर्थात् मानव चेतना, देव चेतना पूर्णता में, दिव्य–चेतना सहज प्रमाण और जागृति पूर्णता के अनन्तर उसकी निरंतरता का परंपरा के रूप में होना नियति क्रम व्यवस्था है। इस सत्यता के आधार पर जागृति पूर्णता विधि से मानव परंपरा वैभवित होना ही इसका प्रयोजन है। जीवन नित्य होने के कारण जागृति भी नित्य होना स्वाभाविक है। इन क्रम में बन्धन, भ्रम, समस्या से ग्रसित बुद्धिजीवी बनाम शब्दजीवी में यह तर्क उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि जागृति क्रम की भी निरंतरता होना चाहिए। इसके लिए जागृति पूर्ण प्रणाली से उत्तर यही है कि जागृति क्रम विधि से जीवन अथवा भ्रम बन्धन विधि से जीवन शैशवकाल से शरीर संचालन करता हुआ मानव संतान जागृत होने का अभिलाषा सहित व्यक्त होने के आधार पर अथवा प्रकाशित होने के आधार पर जागृति क्रम और जागृति पूर्ण परंपरा स्वाभाविक रूप में सहज विधि से ही जागृति प्रतिष्ठा स्थापित करना सहज है। क्योंकि जागृत परंपरा में **स्वायत्त मानव** के लिए अति आवश्यकीय शिक्षा–संस्कार सहज रूप में उपलब्ध रहता ही है। अतएव भ्रमबन्धन का निरन्तरता केवल जीवावस्था में ही प्रमाणित होता है। मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा में, से, के

लिए भ्रमबन्धन की आवश्यकता सर्वथा निरर्थक, अनावश्यक होना पाया गया है।**(अध्याय:5, पेज नंबर:127–128)**

- इसी जागृति क्रम में भय, प्रलोभन, आस्था को पहचानना बना। आस्थाएँ विरोध–विद्रोह से छूटी नहीं। युद्ध घटनाएँ बारंबार दोहराई गई किन्तु युद्ध लोकमानस में पचा नहीं। समर वाद, समर शक्ति, समर विज्ञान को बनाये रखने के लिये द्रोह, विद्रोह, शोषण, अपना–पराया का होना देखा गया। यह भी पीड़ा का एक भाग हुआ। शासन विधि में अपनाई गई (धर्मशासन, राज्यशासन) दंड विधान भी दर्द, यंत्रणा का कारण हुआ। धर्म संविधान के अनुसार महिला और पुरुषों में अधिकार भेद सर्वाधिक यंत्रणा का आधार हुआ। परिवार में जितने भी सदस्य होते हैं उनमें अधिकार भेद ही यंत्रणा और अविश्वास का आधार हुआ। व्यापार और प्रौद्योगिकी प्रतीक मुद्रा रूपी पूंजी के आधार पर चंगुल में आ गई। इस दशक तक अधिकांश प्रौद्योगिकी, कारखानाएँ स्वचालित विधि को अपनाया गया है। इसमें सर्वाधिक पूँजी निवेशी विधि को अपनायी गई। पूँजी का संग्रहण, ब्याज प्रथा, शोषण, लाभांश के रूप में गण्य होना पाया गया। पूँजी –पूँजी से बढ़ता गया। पूँजीहीनता भी और बढ़ता गया। ये सब परिवार और प्रौद्योगिकी संस्था में भागीदारी करता हुआ लोगों में द्वेष का ज्यादा–कम का आधार हुआ। अभी तक द्वेष, विरोध, विद्रोह विहीन परिवार परंपरा नहीं बन पाई थी। **स्वायत्त मानव** के रूप में प्रमाणित होने का अधिकार सम्पन्नता उसका प्रभाव नवें दशक से प्रमाणित होना शुरू हुआ। दसवें दशक में **स्वायत्त मानव** के उम्मीदवार बढ़ चुके हैं। ये सब पीड़ा क्रम में परिवर्तन की आवश्यकता और परिवर्तन की संभावना और परिवर्तन के प्रमाण तक पहुँचने का एक अध्याय सम्पन्न हुआ है। **(अध्याय:5, पेज नंबर:131–132)**
- जागृति के अनन्तर मानव परंपरा में, से, के लिए प्रयोजन सर्वशुभ चाहने वाले मानव सहज और जागृत जीवन सहज विधि से प्रमाण रूप में सार्थक होना देखा गया। मानव सहज विधि से समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व, **स्वायत्त मानव**, परिवार मानव, व्यवस्था मानव और समाज मानव प्रमाणित करता है। इसमें सर्व मानव का स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकार होना देखा गया है इसीलिये इसका लोक व्यापीकरण समीचीन हो गया है। जीवन सहज प्रयोजन, जागृति और जागृतिपूर्णता ही है। जागृतिपूर्णता, उसकी निरन्तरता क्रम में सुख, शांति, संतोष, आनन्द अक्षुण्ण होना पाया जाता है। यह जागृतिपूर्ण मानव (दिव्यमानव) में, से, के लिए प्रमाण और प्रामाणिकता पूर्वक वैभवित होना स्वाभाविक है। यही स्वानुशासन और परम स्वतंत्रता है। यही गति का गंतव्य स्वरूप है। यह प्रमाणित होना नियति सहज विधि है। ऐसे प्रमाण मानव परंपरा में सार्थक होना देखा गया है इसलिये और प्रकार की शरीर रचना को प्रतीक्षीत करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मानव परंपरा में इस दशक में जितने भी नस्ल है उन सभी नस्लों में रचना का प्रधान भाग मेधस होना और वह पूर्णतया समृद्ध होना देखा गया है। अब केवल जागृतिपूर्ण परंपरा की ही आवश्यकता है। यह अनुभवमूलक प्रमाणों को लोकव्यापीकरण विधि से सार्थक होना स्वाभाविक है। यही भ्रम और बंधन मुक्ति का प्रयोजन मानव परंपरा में सुलभ होती है।

  जागृतिपूर्ण परंपरा में ही सर्वमानव व्यवस्था में जीना, समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करना स्वाभाविक है, अनिवार्य है और आवश्यक है। व्यवस्था में जीने देकर जीना परिवार में ही प्रमाणित होता है। इसके मूल में मानव में **स्वायत्तता** अति अनिवार्य स्थिति है। व्यवस्था में जीने का फलन ही समाधान, समृद्धि का प्रमाण और अभय, सह–अस्तित्व का सूत्र होना देखा गया है। **स्वायत्त मानव** का स्वरूप पहले स्पष्ट किया जा चुका है। ऐसे **स्वायत्त** मानव से जागृतिपूर्ण शिक्षा प्रणाली, पद्धत्ति, नीतिपूर्वक सर्वसुलभ हो जाती है। यही भ्रम (बन्धन) मुक्त मानव

परंपरा का सूत्र है। इसके क्रियान्वयन क्रम में परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, ग्राम परिवार और विश्व परिवार के रूप में गठित होने, साकार होने और क्रियारत होने की पूर्ण संभावना, आवश्यकता का संयोग होता है।**(अध्याय:5, पेज नंबर:138–139)**

- जीवन में ही क्रियारत न्याय, धर्म और सत्यात्मक दृष्टियाँ जागृति बन्धन मुक्ति का सूत्र है। न्याय स्वभाविक रूप में परस्पर मानव के सम्बन्धों में प्रमाणित होने वाले तथ्य हैं। यह प्रत्येक मानव के अविभाज्य वर्तमान रूपी मूल्य, चरित्र, नैतिकता से प्रमाणित हो जाता है। मानवीयतापूर्ण आचरण में उक्त तीनों आयाम सम्पन्न आचरण देखने को मिलता है। यह आचरण मानवीयता से परिपूर्ण होते तक यह तीनों आयाम एक दूसरे में पूरक होना संभव नहीं है। यह इस तथ्य का द्योतक है कि मानव जागृतिपूर्वक ही मानवीयतापूर्ण आचरण करने में समर्थ होता है। इसको भले प्रकार से परीक्षण, निरीक्षण कर देखा गया है। जागृति का तात्पर्य जीवन ज्ञान और अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में पारंगत होने से है। मानवीयतापूर्ण आचरण हर विद्यार्थी में, से, के लिये सुलभ होने से है। सह–अस्तित्व ही परम सत्य होने के कारण अस्तित्व में अनुभव होने के क्रियाकलाप को "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" नाम दिया है। इस तरीके से हम सहज ही इस निष्कर्ष में आ सकते हैं कि हर व्यक्ति के जागृत होने की संभावना समीचीन है। जागृत मानव ही **स्वायत्त मानव** के रूप में मूल्यांकित होना पाया जाता है। ऐसे **स्वायत्त मानव** स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी होने का सामथ्र्य, प्रक्रिया, ज्ञान, दर्शन विधाओं में पारंगत होता है। ऐसे मानव ही परिवार मानव के रूप में मानवीयता पूर्ण आचरण को प्रमाणित करता है। मानवीयता पूर्ण आचरण में एक आयाम परिवार में परस्पर संबंधों को पहचानने, मूल्यों को निर्वाह करने, मूल्यांकन करने, उभयतृप्ति पाने के रूप में देखा गया है। इसकी अपेक्षा सर्वमानव में होना पाया जाता है। इसके लिये सम्भावना नित्य समीचीन है। यह मूलत: मानव केन्द्रित अध्ययन, चिन्तन के आधार पर ही सफल होता हुआ देखा जाता है। **(अध्याय:6, पेज नंबर:158–159)**
- सर्वतोमुखी समाधान अपने–आप में सह–अस्तित्व में जागृत होने का फलन है अर्थात् अस्तित्व को सह–अस्तित्व के रूप में जानने–मानने और पहचानने का फलन है। यह स्वयं व्यवस्था सहज कड़ी–दर–कड़ी के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। मानव परंपरा में व्यवस्था स्वयं स्फूर्त अभिव्यक्ति है। क्योंकि **स्वायत्त मानव** मानवीयतापूर्ण शिक्षा पूर्वक प्रमाणित होना देखा गया है और ऐसे **स्वायत्त मानव** ही परिवार मानव और व्यवस्था मानव के रूप में जीना और प्रमाणित होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। अस्तु, **स्वायत्त मानव** सहज अभिव्यक्ति परिवार व्यवस्था में और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने के अर्हता से परिपूर्ण रहता ही है। इसलिये हर **स्वायत्त मानव** व्यवस्था में, से, के लिए भागीदारी को निर्वाह करना सहज है। इस प्रकार हर नर–नारी **स्वायत्त** होना आवश्यक है।

  जागृति विधि का लोकव्यापीकरण मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार, कार्यविधि से सम्पन्न होना भी देखा गया है। मानवीयतापूर्ण शिक्षा अपने में सत्ता में संपृक्त प्रकृति नित्य वर्तमान और विकास क्रम विकास एवं जागृति क्रम जागृति सहज विधि से पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञानावस्थाओं का पूरकता, उपयोगिता, उदात्तीकरण का अध्ययन है। जिसके फलस्वरूप प्रत्येक मानव में **स्वायत्तता,** परिवार व्यवस्था में जीने की कला और समग्र व्यवस्था में भागीदारी स्वयं स्फूर्त होना स्पष्ट हुआ है। ये सभी तथ्य अस्तित्व में अनुभव होने का ही फलन है। कोई भी व्यक्ति अस्तित्व में अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित कर सकता है। इन सम्पूर्ण तथ्यों का अनुभवगामी विधि से अध्ययन

करने और उसमें पारंगत होने के आधार पर सर्वतोमुखी समाधान जीवन सहज विधि से स्वीकृत रहता ही है। ऐसे अनुभव स्वीकृत होने के क्रम में न्याय, साक्षात्कार पूर्वक स्वीकृत रहता ही है। न्याय और समाधान की सार्थकता सहज गरिमा और महिमा ही अभिव्यक्ति क्रम में अनुभवपूर्ण होना अर्थात् अनुभव से परिपूर्ण होना पाया गया है। अनुभव, बोध, संकल्प, चिन्तन सहज विधि से किया गया चित्रण, तुलन, विश्लेषण, आस्वादन और चयन जीवन जागृति के अनन्तर सम्पन्न होने वाले कार्यकलाप है। जागृति ही भ्रम मुक्ति का प्रमाण है और लक्षण भी। प्रमाण का लक्षण प्रमाणित होने के लिये प्रेरक होना ही वर्तमान है। इन तथ्यों प्रक्रियाओं के आधार पर हर मानव अपने अर्हता को परीक्षण निरीक्षण पूर्वक मूल्यांकित कर पाता है। फलस्वरूप अनुभवमूलक विधि प्रक्रिया और फलन की संगीतमयता सहित हर मानव परिवार मानव के रूप में वैभवित होना संभव हो जाता है। इसकी आवश्यकता, अपेक्षा सब में देखने को मिलता है और संभावना सर्व समीचीन है। अस्तु, मानव अनुभवमूलक विधि से जीने की कला पूर्वक अनुभवों को पुष्ट करना चाहता है। यह अस्तित्व में अनुभवमूलक प्रणाली, पद्धति और नीतिपूर्वक सार्थक–सफल होना देखा गया है।(**अध्याय: 6, पेज नंबर:172–174**)

- स्वराज्य व्यवस्था ही होता है, शासन नहीं होता। व्यवस्था के संदर्भ में पहले से उसके स्वरूप को स्पष्ट किया जा चुका है। परिवार मानव विधि से ही स्वराज्य वैभव का उदय होना देखा जाता है। हर परिवार में शरीर यात्रा के लिए शरीर पोषण, संरक्षण एवं समाज गति के लिये आवश्यकीय वस्तुओं को उत्पादित करने का भी कार्यकलाप समाया रहता है। सम्बन्ध–मूल्य–मूल्यांकन–उभयतृप्ति अथवा परस्पर तृप्ति विधि से व्यवहार और आचरण को प्रकट करना मूलतः परिवार का तात्पर्य है। ऐसे परिवार में उक्त तीनों प्रकार की आवश्यकताएँ बनी ही रहती है। इसके निर्वाह क्रम में उत्पादन कार्य की आवश्यकता बना ही रहता है। इसका तात्पर्य यह हुआ परिवार गति और समाज गति के लिए उत्पादन कार्य भी एक आवश्यकीय तत्व है। अस्तु, सम्बंध–मूल्य–मूल्यांकन और उभय तृप्ति विधि से परिवार और समाज सूत्र और आवश्यकता से अधिक उत्पादन–कार्य में परिवार के हर सदस्य का उपयोगिता–पूरकता विधि से भागीदारी परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था के सूत्र में प्रमाणित हो पाता है। इसीलिये प्रत्येक परिवार में, से, के लिए न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय सुलभता, स्वास्थ्य–संयम सुलभता नित्य सार्थक होना सहज है। जिसका स्रोत रूप में मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार और स्वास्थ्य–संयम कार्यकलापों के रूप में होना पाया जाता है। इस प्रकार व्यवस्था सार्वभौमता के दिशा में प्रशस्त होता है और अखण्ड समाज का सूत्र भी नित्य प्रभावी होना पाया जाता है। इसमें मूलसूत्र सह–अस्तित्व सूत्र ही है। यह अथ से इति तक अनुभवमूलक विधि से ही समझ में आता है। अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन होता है फलतः हर व्यक्ति **स्वायत्त मानव**, परिवार मानव, समाज व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होता है। यही अनुभव परंपरा की गरिमा और महिमा है। इसी का फलन मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा परिपूर्ति और तृप्ति व उसकी निरंतरता बन पाती है। **(अध्याय:5, पेज नंबर:180–181)**
- सम्पूर्ण नियम, विविध कार्य प्रणाली, विचार प्रणाली, व्यवहार प्रणालियाँ समाधान के अर्थ में अनुप्राणित रहने से सम्पूर्ण समाधान व्यवस्था सूत्र से सूत्रित रहने से सम्पूर्ण व्यवस्था 'त्व' सहित व्यवस्था के रूप में स्पष्ट रहने से और संपूर्ण व्यवस्था सह–अस्तित्व के रूप में वर्तमान रहने से मानव अपेक्षा, जीवन अपेक्षा का फलवती होना सहज है। इसे मानव परीक्षण–निरीक्षण पूर्वक प्रमाणित कर पाता है। जहाँ परीक्षण–निरीक्षण पूर्वक तथ्यों को अनुभव करने का प्रस्ताव है–यह सब चिन्तनाभ्यास का ही स्वरूप है। चाहे चिन्तनाभ्यास हो, चित्रणाभ्यास हो,

विषयाभ्यास हो मानव अभ्यासी तो रहेगा ही। हर मानव कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित विधि से मानव अपने को अभ्यास विधा में ही प्रशस्त बनाए रखता है। जिसमें से विषयाभ्यास इंद्रिय सन्निकर्ष केन्द्रित होना पाया जाता है और चित्रणाभ्यास विश्लेषण केन्द्रित होना पाया जाता है जिसके लिये श्रुति और स्मृति स्त्रोत होना पाया जाता है। चित्रणाभ्यास सुविधा संग्रह के लिये व्यस्त रहना देखा गया। चिन्तनाभ्यास पूर्वक **मानव स्वायत्त और परिवार मानव** के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। अनुभवमूलक विधि प्रणाली से हर मानव सर्वतोमुखी समाधान सहित समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह कर सकता है। यही जागृति का सर्वोच्च प्रयोजन भी है। **(अध्याय:5, पेज नंबर:183–184)**

- जीवन प्रतिष्ठा सदा–सदा पीढ़ी रहते हुए मानव परंपरा में वैभवित होने के लिये ही संयोगित होना देखा गया है क्योंकि–

    1. मानव परंपरा में जागृति और उसका प्रमाण ही तृप्ति का स्त्रोत है। तृप्ति में मानवापेक्षा–जीवनापेक्षा का संतुलन ही है।

    2. मानव परंपरा में सर्वतोमुखी समाधान का प्रयोजन, कार्य और प्रमाणों की आवश्यकता बना ही रहता है। फलस्वरूप हर व्यक्ति के लिये भागीदारी का स्थान इसमें बना ही रहता है।

    3. जागृति पूर्णता और प्रामाणिकता सहित ही अखण्ड–समाज, सार्वभौम व्यवस्था सर्वमानव में, से, के लिए समीचीन है।

    4. सर्वतोमुखी समाधान पूर्वक ही **स्वायत्त मानव**, परिवार मानव, समाज मानव और व्यवस्था मानव प्रतिष्ठा प्रमाणित होता है।

    5. जागृति पूर्वक ही अज्ञात का ज्ञात, अप्राप्ति का प्राप्ति समीचीन रहता है।

    जागृति पूर्वक ही मानव अस्तित्व में अनुभूत होता है अथवा अस्तित्व में अनुभूत होना ही जागृति है।**(अध्याय:5, पेज नंबर:185–186)**

- वर्णित ऐतिहासिक विफलताएँ अग्रिम अनुसंधान के लिये आधार होना स्वाभाविक है। इस क्रम में इस तथ्य को अनुभव किया जा चुका है कि आँखों से अधिक कल्पनाशीलताएँ हर मानव में विद्यमान है। गणित भी कल्पनाशीलता का ही प्रकाशन है। संख्या के रूप में हर घटना या रूप और गुणों को बताने के लिये प्रयत्न हुआ। गुण ही गति के रूप में होना देखा गया है। गणितीय क्रियाकलाप भी मानव भाषा में गण्य होना पाया जाता है। सर्व मानव में गणना कार्य प्रकट होते ही आया है। ऐसे गणना कार्य को विधिवत् प्रयोग करने के आधार पर रूप सम्बन्धी तीनों आयाम आकार, आयतन, घन को समझने–समझाने का कार्य सम्पन्न होता है। इसी के साथ–साथ गति सम्बन्धी संप्रेषणा भी गणना विधि से लाने का प्रयास हुआ। मध्यस्थ गति गणितीय भाषा में संप्रेषित नहीं हो पायी है। सम–विषमात्मक गतियों को दूरी बढ़ने–दूरी घटने, दबाव और प्रवाह बढ़ने–घटने के साथ परिणामों का आंकलन सहित अध्ययन करने का प्रयास विविध प्रकार से किया गया है। ये दोनों सम–विषम गतियाँ आवेश के रूप में ही गण्य होते हैं जबकि हर वस्तु, हर इकाई, उसके मूल में जो परमाणु है वह अपने स्वभाव गति प्रतिष्ठा में ही उनके त्व सहित व्यवस्था होना पाया जाता है। जो कुछ भी अस्तित्व में त्व सहित व्यवस्था के रूप में व्यक्त है

वह सब मध्यस्थ गति के अनुरूप ही कार्यरत होना देखा गया। मानव में इसका कार्य रूप, कार्य प्रतिष्ठा जागृति मूलक विधि से ही स्पष्ट होना देखा गया है। इसका प्रमाण न्याय, धर्म, सत्य मूलक अभिव्यक्ति के रूप में ही प्रमाणित होता है। इनमें से कम से कम न्यायपूर्ण अभिव्यक्ति क्रम में ही मानव त्व को प्रकाशित कर पाता है। न्याय साक्षात्कार के उपरान्त स्वाभाविक रूप में धर्म और सत्य में जागृत होता है अर्थात् प्रमाणित होता है। इसलिये मानवीयतापूर्ण मानव चेतना पूर्ण पद में संक्रमित होना अति अनिवार्य है। इसी आवश्यकता के आधार पर शिक्षा में प्रावधानित वस्तु जागृति पूर्ण रहना आवश्यक है। यही परंपरा का परिवर्तन कार्य है। शिक्षापूर्वक ही सर्वमानव के जागृत होने का मार्ग प्रशस्त होता है। अतएव मध्यस्थ गति मानव का स्वभाव गति के रूप में मानवीयता को प्रमाणित करने के रूप में ही संभव होता है। फलस्वरूप समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रामाणिकता और **स्वायत्तता** के साथ दिव्य मानव प्रतिष्ठा शिक्षा–कार्य और प्रमाण वैभवित रहता है। यही मानव परंपरा का सर्वांग सुन्दर वैभव है। इसे अनुभव मूलक विधि से ही सम्पन्न करना संभव है। यही दृष्टा पद परम्परा का भी प्रमाण है। **(अध्याय:6, पेज नंबर:194–195)**

- जीवन ही दृष्टा, सह–अस्तित्व ही दृश्य, न्याय, धर्म, सत्यपूर्ण दृष्टियों का क्रियाशीलता ही दृष्टि का स्वरूप है। इसका साक्ष्य है न्याय सुलभता (परस्पर मानव और नैसर्गिकता में) धर्म सुलभता (सर्वतोमुखी समाधान सुलभता) और जागृति सुलभता (प्रामाणिकता और प्रमाण सुलभता) यह सब जागृति केन्द्रित विधि से सह–अस्तित्व रूपी परम सत्य व्यवहार– कार्य रूप में सम्पन्न होना देखा गया है। जागृति हर व्यक्ति का आकांक्षा है ही। इसलिये परंपरा में निर्दिष्ट रूप में शिक्षा–संस्कार परंपरा में इनका सहज अध्ययन–मूल्यांकन पद्धति, प्रणाली, नीतियों को अपनाना ही परंपरा में वांछित परिवर्तन का स्वरूप है। दृष्टा पद रूपी जीवन अथवा दृष्टा पद प्रतिष्ठा में वैभवशील जीवन परंपरा में न्याय, धर्म, सत्य को अभिव्यक्त, संप्रेषित, प्रकाशित करने में मानव ही समर्थ है। इस तथ्य को परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक देखने के उपरान्त ही उद्घाटित किया है। इसलिये कि मानवाकांक्षा, जीवनाकांक्षा ही सर्वशुभ के रूप में है। यह सर्वदा मानव परंपरा में सफल होते ही रहेगी। जागृत परंपरा में ही हर मानव और परिवार सर्वाधिक उपयोगी, सदुपयोगी, प्रयोजनशील होते हुए उपकारी होना देखा गया है। उपकारिता का तात्पर्य मानव को, मानव जागृति मार्ग को प्रशस्त कराते हुए देखने को मिला है। यह क्रिया वश जो मानव कर पाता है वह उपकारी होता है वह जागृति सहज प्रमाणों को प्रस्तुत करता ही है, वर्तमान में समीचीन मानव जो जागृत नहीं हुए हैं उन्हें जागृत होने के लिये योग्य प्रस्तुति के रूप में हो जाता है। यह सह–अस्तित्व में अनुभव सहज प्रामाणिकता सहित सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि सम्पन्न स्थिति और गति के रूप में होना देखा गया है; क्योंकि जागृतिगामी अध्ययन प्रणाली से हर व्यक्ति **स्वायत्त** होता है। **स्वायत्तता** का स्वरूप स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय (उत्पादन) में स्वावलंबी होना देखा गया है। ऐसे **स्वायत्त मानव** ही परिवार मानव के रूप में जीने देकर जीने में समर्थ होता है। यही अद्भूत सामर्थ्यवश सर्वतोमुखी समाधान और समृद्धि वैभवित होता है। यही हर **स्वायत्त** परिवार मानव सफलता का प्रमाण है और सर्वशुभ का भी प्रमाण है। अस्तु, मानव सत्य दृष्टि पूर्वक, धर्म दृष्टि पूर्वक, न्याय दृष्टि सहज **स्वायत्त** होता है और **स्वायत्तता** का मूल्यांकन कर पाता है। इसीलिये परिवार मानव का सार्वभौमता (परिवार मानवता में, से, के लिये सर्वमानव में स्वीकृति) प्रवाहित होना सहज है। **(अध्याय:6, पेज नंबर:231–232)**
- अस्तित्व में जीवन जागृति पूर्वक मानव परंपरा में दृष्टा–पद–प्रतिष्ठा को प्रमाणित करना ही जीवन सहज तृप्ति और अस्तित्व सहज व्यवस्था है। व्यवस्था में ही हर मानव वर्तमान में विश्वास करना और होना पाया जाता है। और

किसी उपाय से अभी तक प्रमाणित नहीं हुआ कि मानव को वर्तमान में विश्वास हो सके, कर सके। जीवन तृप्ति सहित मानव परंपरा तृप्ति, मानव परंपरा में, से, के लिये मूल उद्देश्य है। इसी सार्वभौम आशय को सार्थक बनाने के क्रम में हर व्यक्ति में **स्वायत्तता**, हर परिवार में समाधान, समृद्धि और सम्पूर्ण मानव में समाधान, समृद्धि, अभय, सह– अस्तित्व यही अपेक्षित भोग है। भोग के मूल में सुखापेक्षा का होना सर्वमानव में दृष्टव्य है। यह भी देखा गया है कि समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व में जीवनापेक्षा सहज सुख, शांति, संतोष, आनंद वर्तमानित रहता है। मूल मुद्दा यही है कि सुविधाएँ और संग्रह इन्द्रिय सन्निकर्षात्मक भोग, अतिभोग, बहुभोग इसे वर्तमान तक अर्थात् बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक अभिप्राय माना गया। इनके निष्कर्ष को इस प्रकार देखा गया कि संग्रह–सुविधा–भोग–अतिभोग के क्रम में सुख भासते हुए उसकी निरंतरता नहीं होती – यह सर्व विदित है ही। जबकि हम मानव सदा–सदा से सुखापेक्षा से ही परम्परा क्रम में व्यक्त होते आ रहे हैं। यह घटना अर्थात् संग्रह–सुविधामूलक सुखापेक्षाएँ सदा–सदा ही हर व्यक्ति में क्षणिकता में भंगुरता को सत्यापित कराते ही आया है। ऐसी क्षणिकता (सुख भासने वाली क्षणिकता) को पाने के लिये दिवा रात्रि संग्रह–सुविधा का परिकल्पना–सम्पादन कार्यों में लगा रहता हुआ अथवा लगे रहने के लिये इच्छा करने वाले स्थितियों में अधिकांश लोगों को देखा गया। अंतिम बात क्षणिकता के सत्यापन में ही हर पीढ़ी का उद्गार संप्रेषित होते ही आया। इस मुद्दे का संप्रेषणा इसलिये यहाँ स्मरण में लाया कि मानव परंपरा सुखापेक्षा से ही भय, प्रलोभन, आस्था, संघर्ष झेलता हुआ इतिहास रेखा बनाया है। यह रेखा मानव अपने भोग विधि और प्रवृत्ति विधि का संयोजन में स्पष्ट कर दिया है। प्रवृत्ति विधि कार्य और व्यवहारों में, प्रवृत्ति विधि के मूल में समझदारी का भी चिन्ह बना ही रहा। **(अध्याय:6, पेज नंबर:244–246)**

- सामान्य व्यक्तियों के परस्परता में आजीविका संबंध प्रधान रहा है। इसी के साथ राज्य और धर्म शासन सूत्रों से अनुप्राणित संस्कृति, सभ्यता का धारक–वाहक होते हुए आज तक का इतिहास उक्त चार चौखटों से गुजरता हुआ देखने को मिलता है। यहाँ प्रासंगिक निष्कर्ष यही है, राज्य और धर्म शासन विधि से समाज रचना का सूत्र बनता ही नहीं है, न स्थापित हो पाया है। धर्म और राज्य के साथ, अभी तक जितने भी समुदायों के रूप में स्वीकृतियाँ है, वह सब संघर्ष परक ही है क्योंकि अभी तक समुदायगत राज्य और धर्म सर्व स्वीकृति होना संभव नहीं हो पाया। धर्म और राज्य शासन छल बल और प्रताड़ना जैसे औजारों के आधार पर ही गतिशील रहना देखने को मिल रहा है। इसका साक्ष्य यही है, धर्मशासन के अनुसार मानव प्रजाति सदा ही स्वार्थी अज्ञानी व पापी है। इससे छुटकारा दिलाना धार्मिक कार्यक्रम है। इस धरती पर जितने भी राज्य शासन है उनका मानना यही है देशवासी गलती–अपराध कर सकते हैं, पड़ोसी देश युद्ध कर सकते हैं इसलिये गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना और युद्ध को युद्ध से रोकना है यही सभी राज्यों का कार्यक्रम है। इस बीच जन सुविधा, जन कल्याण के नाम से जन, तन, धन, मन को लगाकर कल्याणकारी कार्य का दावा किया करते हैं यही अभी तक देखने को मिलता है। ऐसी जनकल्याणकारी कार्य दूरसंचार, यातायात, वाहन, सड़क, स्वास्थ्य, जनसुविधा व शिक्षण संस्थाओं के रूप में होना देखने को मिलता है। इस धरती में कलात्मक विज्ञान, तकनीकी, व्यापार की शिक्षा ही स्थापित हुई दिखती है। इस धरती में अभी तक न्याय पूर्ण व्यवहार और समाधानपूर्ण व्यवस्था मानवीयता पूर्ण शिक्षा में प्रवेश ही नहीं हो पाया। जबकि विनिमय व सार्वभौम व्यवस्था ही शिक्षा की सम्पूर्ण आत्मा है। ऐसी व्यवहार शिक्षा के लिये आवर्तनशील अर्थशास्त्र और व्यवस्था, व्यवहारवादी समाज शास्त्र और व्यवस्था, मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान और व्यवस्था अनिवार्यतम स्थिति है। उत्पादन, प्रौद्योगिकी, तकनीकी को हर परिवार में

समृद्धि सम्मत विधि से विकसित और स्थापित करने की आवश्यकता है। एक पीढ़ी समृद्ध होता है, आगे पीढ़ी को समृद्ध बनाने के लिये स्थापना कार्य को करते रहता है। समृद्धि के मूल में मानव व्यवहार ध्रुवीकृत होना आवश्यक है। मानव व्यवहार सूत्र मानव की परिभाषा और मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में अनुप्राणित होना देखा जाता है। फलस्वरूप परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। शिक्षा–संस्कार से हर मानव में **स्वायत्तता** प्रमाणित होना ही इसकी सार्थकता है। इन तथ्यों को पहले भले प्रकार से स्पष्ट किया जा चुका है। यथार्थ यही है हर जागृत मानव सुख, शांति, संतोष को ही भोगता है और कोई चीज को भोगता नहीं है। सुविधा–संग्रह भी सुख, लक्षित होना सुस्पष्ट हो चुका है। इसी के साथ इसकी क्षणिकता–भंगुरता भी है, अतएव मानव इतिहास रूपी चारों सोपानों में कहीं भी सुख भोग की निरंतरता नहीं हो पायी। अब केवल परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था उसके पाँचों आयामों सहित कार्यप्रणाली में मानवापेक्षा सहित जीवनापेक्षा रूपी सुख, शांति, संतोष, आनंद भोगने में मिलता है। इसे भले प्रकार से हम देख पाये हैं। इस स्थिति के लिये हर व्यक्ति जागृत हो सकता है। इसी तथ्य के आधार पर सर्वसुख समीचीन है। सर्ववांछनीयता भी यही है। इस प्रकार जीवन भोक्ता है, सुख भोग है, भोग्य वस्तु व्यवस्था है। शरीर सहित मानव समाधान–समृद्धि अभय, सह–अस्तित्व सहज तथ्यों को भोगता है। **(अध्याय:6, पेज नंबर:248–250)**

- जीना कम से कम तीन आयामों में स्वयं स्फूर्त विधि से सम्पन्न होता है। तभी व्यवस्था में जीने का रस और सुख अपने आप मिलने लगता है। ऐसे तीन आयाम को न्याय सुलभता (न्याय प्रदायिता एवं पाने में सुलभता), उत्पादन सुलभता और विनिमय सुलभता पूर्वक ही हर परिवार व्यवस्था में जीता हुआ अनुभव करता है। ज्यादा से ज्यादा मानव, मानवीयतापूर्ण व्यवस्था में पाँचों आयामों में अपने भागीदारी को प्रमाणित करता है। यह उक्त तीनों के साथ शिक्षा–संस्कार सुलभता और स्वास्थ्य–संयम सुलभता है। इन्हीं व्यवहारिक आधारों के कारण मानव को जागृत और जागृतपूर्ण स्थितियों में देखा गया है। यह सबके लिये समीचीन है। इन्हीं दो स्थिति को क्रम से क्रियापूर्णता और आचरणपूर्णता का नाम दिया है। आचरण की विशालता में ही विशाल, विशालतर और विशालतम व्यवस्था में भागीदारी सम्पन्न होना सहज है। सम्पूर्ण प्रक्रिया का सफल स्वरूप समाधान और समृद्धि के रूप में मूल्यांकित होता है। अभय, सह–अस्तित्व मानवीयता पूर्ण आचरण का फलन है। इन तथ्यों को भली प्रकार से देखा गया है। इस प्रकार हर परिवार मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार पूर्वक **स्वायत्त मानव** और परिवार मानव के रूप में जीते हुए व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण प्रस्तुत करना सहज है। सहजता का तात्पर्य जागृति पूर्वक प्रमाण सहज गति ही सहज होना। जागृति नित्य समीचीन रहता ही है। यह परम्परा जागृत होने के उपरान्त ही सर्वसुलभ होता है। मानवापेक्षा, जीवनापेक्षा ही सार्वभौम अपेक्षा है। यही जागृति और कैवल्य का प्रमाण है। **(अध्याय:7, पेज नंबर:259–260)**

# सन्दर्भ : व्यवहारवादी समाजशास्त्र

(**संस्करण** : 2009)

- पहले नौ बिन्दुओं में इंगित किये गये तथ्यों का अध्ययन ही शिक्षा–संस्कार का सर्वसाधारण और आवश्यक स्वरूप है। अस्तित्व में सदा–सदा ही समाधान और सामरस्यता सह–अस्तित्व सहज वर्तमान होने के कारण है। और विरोधाभास और विशेष तथा सामान्य जैसी विषमताओं का कोई गवाही नहीं है। ऐसा विरोधाभास मानव में क्यों आया और कैसे आया इसके उत्तर में पहले विदित कराया गया है कि मानव विभिन्न जलवायु में इस धरती में अवतरण होने और विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में परंपरा को (अर्थात् पीढ़ी से पीढ़ी) को सुदृढ़ बनाने के क्रम में विरोधाभास को ही धातु युग, राज्य और आस्था युग तथा विज्ञान युग में भी स्वीकारना हुआ या सीमित रहना हुआ या विवश रहना हुआ। यही सम्पूर्ण अनिष्ट जो बुद्धिमान मानव जान लिया है, जिसको अभी भी जानना शेष है ऐसे सभी अनिष्ट घटनाओं का कारण सिद्ध हुआ है। यही मानव में अभी तक की भय, प्रलोभन, आस्थाओं से संबंधित सम्पूर्ण मान्यताएँ है। इसी में श्रेष्ठता–नेष्ठता, ज्यादा–कम, विद्वान–मूर्ख, ज्ञानी–अज्ञानी जैसी वितण्डावाद बना ही है। यही विरोधाभास समस्याओं के रूप में मानव परंपरा में भुक्त–भोगित स्थितियाँ है। वितण्डावाद और विषमताएँ किसी मानव को स्वीकार्य नहीं है। भले ही पंचमानव कोटि में से पशुमानव और राक्षस मानव क्यों न हो। विषमता दुष्टता की पीड़ा मानव को स्वीकार नहीं हुआ क्योंकि दुष्टता से, विषमता से सदा विरोध होते ही रहा। अब उसका निराकरण ही समाधान होना सहज है। समाधान, समृद्धि विधि से सम्पूर्ण विषमताएँ समाधान में परिवर्तित होने का मार्ग प्रशस्त होता है जैसा प्रत्येक मानव समझदारी से समाधान श्रम से समृद्धि पूर्वक **स्वायत्तता** से समृद्ध होने से ही समाधानित होता है। यही परिवार मानव का स्वरूप भी है। यह चेतना विकास मूल्य शिक्षा–संस्कार विधि से सर्वसुलभ होने की व्यवस्था मानवीय शिक्षा–संस्कार परंपरा का वैभव है। शिक्षा–संस्कार मानव परंपरा में अविभाज्य अभिव्यक्ति संप्रेषणा है। शिक्षा–संस्कार परंपरा का अभिव्यक्ति संप्रेषणाएं मानव जागृति का प्रमाण है। जागृति के प्रमाण का तात्पर्य **स्वायत्त मानव** के रूप में पीढ़ी से पीढ़ी समृद्ध बनाने से है। इससे स्पष्ट हो गया है कि शिक्षा–संस्कार का उद्देश्य **स्वायत्त मानव** के रूप में समृद्ध करने में सक्षम रहना है।

**स्वायत्त मानव** स्वयं के प्रति विश्वास, स्वयं में विश्वास का तात्पर्य व्यवस्था के रूप में जीने, समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने में विश्वास से हैं। श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, व्यवस्था में जीने और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने में समर्थ सभी व्यक्ति श्रेष्ठ हैं जो प्रमाण के रूप में प्रमाणित किये जा रहे हैं। ऐसे सभी के प्रति सम्मान होना स्वाभाविक है। यही तथ्य से श्रेष्ठता के प्रति सम्मान स्पष्ट है। इसे ऐसा भी कहा जा सकता है स्वयं जिस बात को चाहते हैं उन तथ्यों में प्रमाणित सभी व्यक्ति सम्मान के लिये पात्र हैं। ऐसे व्यक्तियों के प्रति सम्मान व्यक्त करने से हैं। सम्मान का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में स्वीकृति और मूल्यांकन सहित संप्रेषित हो पाना। संप्रेषणा का भी तात्पर्य पूर्णता के ही अर्थ में ही प्रस्तुत हो पाना बनता है। इसलिये सम्मान सहज श्रेष्ठता सर्वमानव में स्वीकृत होता है। **स्वायत्त मानव** में स्वयं के प्रति सम्मान, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान सहित ही प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन प्रमाणित होता है। संतुलन का तात्पर्य ज्ञान दर्शन, विवेकपूर्ण तर्क (विवेचना, विश्लेषण) और आचरणों में सामरस्यता, एक दूसरे के साथ पुष्टि प्रमाण होने से है। व्यक्तित्व का तात्पर्य किये जाने वाले आहार, विहार, व्यवहार और कार्यों से मूल्यांकित होने से है। प्रतिभा का तात्पर्य सम्पूर्ण आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्य, देश,

कालों में प्रामाणिकता और उसकी निरंतरता, समाधान और उसकी निरंतरता के रूप में अभिव्यक्त संप्रेषित, प्रकाशित करने में विश्वास। इसका सत्यापन भी इसी के साथ समाया रहता है। सत्यापन मैं कर सकता हूँ, करूँगा, किया हूँ, कर रहा हूँ, इन ध्वनि और इन ध्वनियों से संकेतिक ध्रुवों से है। किया हुआ हूँ, कर रहा हूँ, यह कर सकता हूँ, करूँगा का प्रेरणास्रोत होना पाया जाता है। इसी विधि से परंपरा समृद्ध होने के तथ्य को समझा गया है।

**स्वायत्त मानव** का व्याख्या प्रत्येक मानव ही होना पाया जाता है। इसके बावजूद भाषा और शब्द के माध्यम से सच्चाई को इंगित कराने की प्रक्रिया, इसकी सार्थकता की अपेक्षा है। वाङ्गमय सार्थकता का तात्पर्य सच्चाइयाँ अपने स्वरूप में इंगित होने से है। यह इंगित होना भी एक प्रक्रिया है। अतएव स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलनपूर्वक ही मानव व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी होना पाया जाता है। व्यवहार में सामाजिक होने का तात्पर्य व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होना ही है। इस प्रकार मानव ही प्रमाण का आधार है न कि वाङ्गमय। वाङ्गमय का स्मरण यहाँ इसलिये किया गया है कि वाङ्गमय प्रमाण के आधार पर मानव जाति विविध परंपरा में क्षत–विक्षत हो चुका है। अर्थात् स्वयं पर विश्वास हो पाने का मार्ग प्रशस्त नहीं हो पाता। प्रत्येक मानव स्वयं पर विश्वास नहीं करेगा, तब तक अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का अंगभूत होना प्रमाणित नहीं करेगा। मानव अपने को प्रमाणित किये बिना परंपरा होना संभव नहीं है। इसीलिये **स्वायत्त मानव** को पहचानने के उपरान्त ही **स्वायत्त** परिवार प्रमाणित होना देखा गया है। **स्वायत्त मानव** के परीक्षण, मूल्यांकन और प्रस्ताव क्रम में व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबन एक अनिवार्यतम अधिकार और अभिव्यक्ति है। व्यवहार में सामाजिक होने का मूल रूप आचरण ही है। मानवीयतापूर्ण आचरण में ही मूल्य, चरित्र, नैतिकता का प्रकाशन–संप्रेषणा होना पाया जाता है। मूल्यों का प्रमाण संबंधों को पहचानने के उपरान्त ही होता है। यह सर्वमानव विदित है अथवा सर्वमानव इसे परीक्षण कर सकता है। अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व विधि से सम्बन्ध नित्य वर्तमान है। संबंध का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में अनुबंधित होने से है। अनुबंध का तात्पर्य निष्ठा से है। वह भी स्वीकृतिपूर्वक स्वयं स्फूर्त निष्ठा से है। यह निष्ठा **स्वायत्त मानव** में ही प्रतिपादित और प्रमाणित होता है।**(अध्याय:4,पेज नंबर: 78–82)**

- मूल्य, चरित्र, नैतिकताएं अविभाज्य रूप में **स्वायत्त मानव** में प्रमाणित होने का क्रम ही आचरण है। मानव अपने **स्वायत्त** आचरण सहित ही कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित रूप में सामाजिक होना प्रमाणित करता है। संबंधों के आधार पर जैसा मानव संबंधों को प्रयोजनों और व्यवस्था के सूत्रों के रूप में देखा गया है कि सम्मान संबंध जिसमें सम्मानित होने वाला और सम्मान करने वाले का परस्परता में होने वाले कार्यव्यवहार सम्मान संबंध का साक्ष्य है। सम्मान संबंध में स्पष्ट हो चुका है कि स्वयं से अधिक जागृत प्रमाणित व्यक्तियों के प्रति, स्वयं के प्रति विश्वास के आधार पर स्वयं स्फूर्त विधि से मुखरित और आचरित होने वाला क्रियाकलाप जिसका प्रयोजन सम्मानित होने वाले व्यक्ति में सम्मान किया या स्वीकृति होना आवश्यक है। सम्मान परस्परता में मूल्यांकन है। ऐसा सम्मान करने और सम्मानित होने का मूल्यांकन उभयतृप्ति का स्रोत होना पाया जाता है। सम्मान करने, सम्मान स्वीकृत करने का क्रियाकलाप ही जागृति सहज व्यवहार कहलाता है। संबंध स्वयं से, स्वयं के लिये, स्वयं में जाना, माना, पहचाना हुआ, निर्वाह करने के लिये आधार है। स्वयं में तृप्ति पाने का उद्देश्य अथवा तृप्त होने का उद्देश्य और तृप्त रहने का उद्देश्य बना ही रहता है। संबंधों को पहचानने के उपरान्त उसका

प्रयोजन केवल भय मुक्ति ही है। भय मूलतः भ्रम के रूप में होना विदित है। भ्रम; अधिक, कम, अथवा विपरीत पहचान और मान्यता है। यही भय प्रलोभन का कारण और स्वरूप है। इसी क्रियाकलाप को भ्रम नाम हैं।... यहाँ यह भी स्मरणीय बिन्दु है कि अस्तित्व में केवल मानव ही अपने ही प्रयासों से भ्रमित होता है क्योंकि मानव में ही कर्म करने में स्वतंत्रता, फल भोगने में परतंत्रता दिखाई पड़ती है। कोई भी कार्य करने के मूल में विचारों का होना पाया जाता है। विचार पूर्वक ही ज्यादा, कम या विपरीत कार्यों में ग्रसित हो जाता है। भयपूर्वक मानव भ्रमित कार्यों को करता ही है, प्रलोभनपूर्वक भी करता है। भयपूर्वक सभी भ्रमित कार्य अस्वीकृतिपूर्वक होता है, प्रलोभन से संबंधित सभी कार्य स्वीकृतिपूर्वक होता है। इन दोनों विधा में भ्रम ही कारण है। आस्था विधा में स्वर्गवादी, जितने भी कल्पना–परिकल्पना मानव ने कर रखा है वह सब प्रलोभन का ही विस्तार रूप में होना पाया जाता है। नर्क में भी भय का ही विस्तार वर्णन होना पाया जाता है। इसके अतिरिक्त और कोई चीज आस्था विधा से खोजा जा रहा है वह प्रमाणित नहीं हो पाया अर्थात् समाज परंपरा में शिक्षा, संस्कार, व्यवस्था, संविधान के रूप में प्रमाणित नहीं हुआ है। इसका विकल्प में ही जीवन ज्ञान परम ज्ञान के रूप में जागृति और उसकी प्रमाण सहित परम्परा बनना संभव हो गई है। यह अध्ययनगम्य है। ऐसा जागृत मानव का आचरण ही मानव कुल का वैभव और संविधान होना पाया जाता है। इसी के पुष्टि में सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान अध्ययनगम्य हुआ है। फलतः मानव में **स्वायत्तता** की सम्पूर्ण स्रोत नित्य समीचीन है। हर मानव जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में होने के आधार पर जीवन ही जागृति पूर्वक दृष्टा पद में अपने ऐश्वर्य को प्रमाणित करने की सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज और उसके वैभव को जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह करने की आवश्यकता, अवसर समीचीन है। इस प्रकार हर व्यक्ति जागृति पूर्वक ही **स्वायत्तता** का प्रमाण है। **स्वायत्त** मानव रूप प्रदान करने की शिक्षा–संस्कार ही मानव परंपरा सहज जागृति का प्रमाण है। **(अध्याय:4, पेज नंबर: 82–84)**

- समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्वपूर्ण जीने की कला में दृढ़ता को स्थापित करने और दृढ़ता से सम्पन्न होने की क्रियाकलापों में मूल्यांकन सहज तृप्ति को पाया जाता है। यही कोण, आयाम, परिप्रेक्ष्यों में विधिवत् तृप्ति पाने का स्रोत है। यह समीचीन है। यह एक आवश्यकता भी है। इन्हीं तृप्तियों को पाने के क्रम में मूल्यों का निर्वाह करना सहज है। इस प्रकार व्यवहार में सामाजिक होने का सम्पूर्ण अर्हता **स्वायत्त मानव** में शिक्षा–संस्कारपूर्वक समाहित होता है और प्रमाणित होता है। **(अध्याय:4, पेज नंबर: 88)**
- मानव परिवार और कार्य – **स्वायत्त मानव** ही अर्थात् **स्वायत्त** नर–नारी ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होते हैं। परिवार का परिभाषा में वर्तमान होना ही **स्वायत्त मानव** का प्रमाण है। मानवीय शिक्षा–संस्कारपूर्वक ही हर विद्यार्थी **स्वायत्तता** सम्पन्न होता है। मानवीय शिक्षा का परिभाषा भी यही है। जब यह परिवार परिभाषा में प्रमाणित होते हैं तब सहज ही एक–दूसरे के साथ सम्बन्धों को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन करते हैं और श्रम मूल्य का भी मूल्यांकन करते हैं। सम्बन्ध निर्वाह, मूल्य निर्वाह का मूल्यांकन करते हैं, उभयतृप्ति पाते हैं। यही परिवार मानव का प्रमाण है। यही परिवार मानव के रूप में अनेक परिवार सभा यथा परिवार समूह सभा, ग्राम परिवार सभा के रूप में संतुलन निर्वाचन विधि से कार्यरत होना पाया जाता है। परिवार मानव, परिवार समूह, ग्राम परिवार और विश्व परिवारों तक सभी परिवार सभा क्रम से, (क्रम से का तात्पर्य विशालता और समग्रता की ओर) परिवार समृद्धि सम्पन्नता का व सभा विधि व्यवस्था का धारक–वाहक रूप में समाज और व्यवस्था को अभिव्यक्त करते हैं। हर परिवार, परिवार समूह, ग्राम परिवार, ग्राम परिवार समूह विधि से विश्व परिवार तक संतुलन का स्वरूप मानवीय शिक्षा–संस्कार न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य

संयम, मानवीय शिक्षा सुलभता पूर्वक संबंध में सहज **स्वायत्त** रहना पाया जाता है। हर सुलभता में उभयता एक अनिवार्य स्थिति है। उभयता का तात्पर्य मानव की परस्परता; नैसर्गिक अर्थात् जल, वायु, धरती और सूर्य उष्मा का परस्परता सदा रहता ही है। मानव के परस्परता में संबंधों के साथ ही नैसर्गिक उपलब्धियों अर्थात् उत्पादन होता है। क्योंकि नैसर्गिक संयोग से ही हर उत्पादन होना देखा जाता है। ऐसा उत्पादन, विनिमय के लिये वस्तु होना पाया जाता है। और व्यवहार के लिये हर **स्वायत्त मानव**; संबंध दृष्टा, मूल्य दृष्टा होना पाया जाता है। जानने, मानने, पहचानने की विधि से संबंधों का पहचान होना पाया जाता है। उसकी स्वीकृति के फलन में जीवन सहज अक्षय शक्ति, अक्षय बल रूपी ऐश्वर्य; मूल्यों के रूप में एक दूसरे के लिये स्वीकार्य योग्य रूप में आदान–प्रदान होता है। यही मानव संबंध और मूल्यों का तात्पर्य है। ऐसे संबंधों को सात रूप में पहचाना गया है। और मूल्यों को क्रम से जीवन मूल्य को चार स्वरूप में, मानव मूल्य छह स्वरूप में, स्थापित मूल्य नौ स्वरूप में, शिष्ट मूल्य नौ स्वरूप में और वस्तु मूल्य दो स्वरूप में समझ सकते हैं। **(अध्याय:4, पेज नंबर: 91–92)**

- इससे यह स्पष्ट हो गया है कि पीढ़ी से पीढ़ी को परम्परागत चारों प्रयासों से जैसा शिक्षा, संस्कार, संविधान, व्यवस्था के नाम से जो कुछ भी दिये जा रहे हैं इससे अभी तक इस देश धरती में परम सत्य बोध, परम समाधानबोध, परम न्यायबोध करने–कराने और करने के लिए मत देने का आधार ही नहीं बन पाया है, अर्थात् ऊपर वर्णित चारों आयामों में वांछित, सर्ववांछित, सर्वदा वांछित उक्त तीनों तथ्यों को स्पष्ट करने में असमर्थ है। समुदाय परम्परा के रूप में ही हम सब पलते आये हैं और पहुँच गये हैं संग्रह–सुविधावादी उपभोक्ता मानसिकता स्थली में। अभी तक पहुँचा हुआ लोगों का सामान्य गणना 15% उससे कम ही मानी जाती है। चाहने वाली प्रतिशत 85% शेष है। यह धरती में निवास करने वाले संपूर्ण मानव के संदर्भ में कहा जा रहा है।ऐसे 10% से 15% संख्या में से जो लोग आते हैं संग्रह–सुविधा के चोटी की ओर दौड़ रहे हैं। उल्लेखनीय बिन्दु यही है कि इसका तृप्ति बिन्दु अस्तित्व में नहीं है। इस विधि से संग्रह सम्मोहन और उन्माद अन्तविहीन वितृष्णा की ओर ले जाता है। एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि इस धरती में 15% वे लोग जो संग्रह सुविधा में लिप्त है उन्हीं को उन्हीं के लिये यह धरती कम पड़ गई है। उनके लिए इस धरती की वन सम्पदा, खनिज सम्पदा और श्रम सम्पदा कम पड़ गई है बाकी 85% के लिये ये सब सम्पदायें और उसका विधिवत् शोषण कार्य का स्रोत कहाँ है ? इस प्रकार मानव सुविधा, संग्रह, शोषण, उपभोक्ता (उन्मुक्त भोग, संस्कृति प्रवृत्ति उन्माद) विधि से निग्रह बिन्दु के कगार में है। इसलिए **स्वायत्त** सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व क्रम को अपनाना ही एक मात्र उपाय है इस धरती पर मानव परम्परा विश्वस्त एवं आश्वस्त विधि से सदी से सदी, युगों से युगों तक जागृति पूर्ण योजना कार्यक्रम सम्पन्न प्रणाली, पद्धति, नीति पूर्वक ज्ञानावस्था के सहज वैभव को प्रमाणित करने की आशय से है। हमारा सम्पूर्ण निष्ठा सहज रूप में ही मानव सर्वदा शुभ चाहने वाला है। वह भी सर्वशुभ चाहने वाला है। यही कारण रहा इस प्रस्ताव को अर्थात व्यवहारवादी समाज जिसका स्वरूप सार्वभौम एवं अखण्ड व्यवस्था है, का ही यह प्रतिपादन और प्रस्ताव है। (अध्याय:4, पेज नंबर:98–99)

- हर मुद्दे पर आवश्यकता और अनावश्यकता का निर्णय हम इस विधि से पाते हैं कि निश्चित लक्ष्यगामी स्थिति–गति के लिए प्रेरक, सहायक होने के सभी तथ्यों को आवश्यकता के अर्थ में और इसके विपरीत अर्थात् लक्ष्य के विपरीत सभी प्रकार की देशकाल में हुई घटनाएँ मानव परंपरा के लिये अनावश्यक है। सम्पूर्ण मानव का मूल लक्ष्य इसकी अक्षुण्णता, अखण्डता सार्वभौमता ही इंगित है। इसका प्रमाण स्वरूप समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व है। यह दायित्व, कर्तव्य, संज्ञानशीलता, संवेदनशीलता पूर्वक हर मानव में, से, के लिये समान रूप में आवश्यक और समीचीन होना और सार्थकता का मूल्यांकन होना तथा नित्य उत्सव होना पाया जाता है। इसी अर्थ में आवश्यकता और अनावश्यकता का वर्गीकरण हो पाता है। लक्ष्य और प्रमाण के सार्थकता, सामरस्यतासहज सहज सभी श्रुति–स्मृति, साक्षात्कार, अनुभव ज्ञान, दर्शन, व्यवहार, व्यवस्थाएँ, नित्यगति रूप में सार्थक होना पायाजाता जाता है। इसी क्रम में जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, परिवार मानव, **स्वायत्त मानव**, संयोजन, योजन कार्यविधि विधि से मानव परंपरा युगों–युगों तक सफल होने का मार्ग प्रशस्त है। **(अध्याय:4, पेज नंबर:101–102)**
- पहले इस तथ्य को स्पष्ट किया जा चुका है **स्वायत्त मानव** अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व वैभव के रूप में स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवसाय में स्वावलंबन, व्यवहार में सामाजिक रूप में प्रतिष्ठा है। यह जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन मूलक विधि से लोकव्यापीकरण होने के तथ्य को स्पष्ट किया है। ऐसे प्रत्येक मानव के सार्थक सफल और परिवार मूलक व्यवस्था का धारक–वाहक होना पाया जाता है। इस विधि से सर्वमानव, **स्वायत्त मानव,** परिवार मानव, परिवार व्यवस्था मानव के रूप में शिक्षा–संस्कारपूर्वक नित्य वर्तमान होने के आधार पर मानव जाति एक होने का अर्थ अपने आप में नित्य वर्तमान है। अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व विधि ही इसका मूल सूत्र है। सह–अस्तित्व में ही मानव परंपरा, समाधान, समृद्धि, अभय (वर्तमान में विश्वास), जीने की कला, विचार शैली और अनुभव बल में सामरस्यता होना पाया जाता है। इसकी संभावना नित्य समीचीन है। इसीलिए मानव जाति एक है। **(अध्याय:4, पेज नंबर:102–103)**
- मानव जाति की एकता, अखण्डता, अक्षुण्णता मानव इसीलिए समझ सकता है मानव ही ज्ञानावस्था की प्रतिष्ठा है और प्रत्येक मानव जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने योग्य इकाई है। इन दोनों कारणों से मानव प्रतिष्ठा को मौलिक रूप में पहचाना जाता है।

  इसलिये भी मानव जाति एक होने का सूत्र सार्वभौम व्यवस्था है। यह सर्वतोमुखी समाधान सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन ही है। यह मानवीयतापूर्ण मानव सहज प्रमाण है। इसका स्वरूप **स्वायत्त मानव** से परिवार मानव और परिवार सभा, ग्राम परिवार सभा और विश्व परिवार सभा क्रम में समाज के चारों आयाम और व्यवस्था के पाँचों आयामों में सामरस्यता सहज प्रमाणों को अक्षुण्ण बनाये रखे जाना स्पष्ट किया जा चुका है। मानव का वैभव प्रतिष्ठा और अपेक्षा अनुपम संगीत चेतना विकास मूल्य शिक्षा से ही अपने–आप सर्वसुलभ होता है। इस विधि से भी अर्थात् परिवार मूलक स्वराज्य विधि से सार्वभौमता का अर्थ सार्थक होता है। इसलिये भी मानव जाति एक होना पाया जाता है। **(अध्याय:4,पेज नंबर:103)**

- सर्वमानव सहज रूप में ही समान है। इसीलिये मानव धर्म सर्वमानव में समान है। यह तथ्य समझ में आता है। सर्वतोमुखी समाधान का तात्पर्य ही है स्वयं व्यवस्था में और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का निर्वाह करना। इसी विधि से मानव अपने में चिरआशित स्वराज्य को पाकर सुख, शांति, संतोष और आनन्द को पाकर; समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व को प्रमाणित करता है। यही मुख्य रूप में मानव का चाहत भी है। मूलतः धर्म एक शब्द है। हर शब्द किसी का नाम है। धर्म शब्द से इंगित वस्तु मानव जागृति और उसका प्रमाण रूपी प्रामाणिकता, सर्वतोमुखी समाधान ही है। इसका स्वीकृत स्वरूप ही सुख, शांति, संतोष, आनन्द है। इसका दृष्टा पद में भी सुख, शांति, संतोष आनन्द है। इसका दृश्य रूप ही व्यवस्था है। वह परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक गुँथे हुए स्वरूप में दिखाई पड़ती है। व्यवस्था सहज अभिव्यक्ति ही अथवा फलन ही समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व है। इस प्रकार जीवन सहज लक्ष्य, मानव सहज अर्थात् अखण्ड समाज सहज लक्ष्य, संगीत, विन्यास है, यही समाधान के रूप में निरूपित होती है। सह–अस्तित्व और अनुभव में संगीत है। यही आनन्द के नाम से विख्यात होता है। न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य–संयम, शिक्षा–संस्कार में होने वाला अनुभव ही सर्वतोमुखी समाधान है। यह मानव सहज जागृति की अभिव्यक्ति और संप्रेषणा है। सम्पूर्ण मानव अपने परिवार सहज आवश्यकता से अधिक कार्य करता है इसके फलन में समृद्धि का अनुभव होता है। यह भी समाधान है। हर परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक सम्बन्धों का पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन और उभयतृप्ति पाने की विधि जागृतिपूर्वक सम्पन्न होता है। यह निरन्तर समाधान है। लाभ–हानि मुक्त विनिमय प्रणाली जागृति सहज मानव की अपेक्षा है। इस विधि से विनिमय कार्य का क्रियान्वयन स्वयं समाधान है। स्वास्थ्य संयम, स्वाभाविक रूप में जीवन जागृति को शरीर के द्वारा मानव परंपरा में प्रमाणित करने योग्य शरीर है। यही स्वास्थ्य का निश्चित स्वरूप है। जागृतिपूर्ण परंपरा में सर्वमानव अपने स्वास्थ्य को स्वस्थ बनाये रखने का उपाय और स्रोत बना ही रहता है। यह स्वयं में समाधान है। प्रत्येक मानव मानवीय शिक्षा–संस्कार पूर्वक **स्वायत्त मानव**, परिवार मानव, विश्व परिवार मानव के रूप में प्रमाणित हो पाता है। यह सर्वतोमुखी समाधान है। (**अध्याय:4, पेज नंबर:114–115**)
- मानवीयता सहज जागृति व जागृतिपूर्ण अखण्ड समाज– सार्वभौम व्यवस्थापूर्वक परम्परा के रूप में अर्थात् पीढ़ी से पीढ़ी के रूप में निरंतरता को प्रमाणित करता है। यह करना, कराना एवं करने के लिये मत देना मानव में, से, के लिये मौलिक विधान है।

  व्याख्या – यह अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन बीज रूप में हर परिवार में प्रमाणित होना स्वाभाविक है। परिवार में हर सदस्य **स्वायत्त** होना ही उनके वयस्कता का प्रमाण है। ऐसे प्रमाण सम्पन्न परिवार के रूप में स्थिति परस्परता में ही संबंधों का पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन और उभय तृप्ति जिसका नाम विश्वास है, प्रमाणित होती है एवं निरन्तरता बनी रहती है। और परिवार सहज आवश्यकता के आधार पर अपनाया/स्वीकारा गया उत्पादन कार्य में एक–दूसरे के लिये पूरक होते हैं। यह समृद्धि का स्रोत होना पाया जाता है। यह प्रत्येक परिवार में, से, के लिये संभावी है। समृद्धि का अनुभव सामान्य आकांक्षा, संबंधी वस्तुओं से होना पाया जाता है। महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुएं समृद्धि के लिये सहायक है। (**अध्याय:6,पेज नंबर:132–133**)

- सर्वतोमुखी समाधान और तृप्ति सहज निरंतरता सर्वमानव का अभीष्ट है। जागृत मानसिकता का संतुलन और सार्थक स्वरूप यही है। संतुलन ही मानव सहज स्वभाव गति है। ऐसे स्वभाव गति का प्रमाण स्वरूप **स्वायत्त मानव** और परिवार मानव ही है। **स्वायत्त मानव**, मानवीय शिक्षा–संस्कार पूर्वक सार्थक होता है। मानवीय शिक्षा–संस्कार परंपरा और शिक्षा ग्रहण करने की अपेक्षा हर मानव में निहित है। (**अध्याय: 6, पेज नंबर: 137**)
- परिवार मानवता सम्पन्न व्यक्ति में ही सम्पूर्ण अथवा मानवीयतापूर्ण प्रतिज्ञाएँ निर्वाह होते हैं। इस विधि से विवाह के पहले हर नर–नारी परिवार मानव के रूप में प्रतिज्ञा स्वीकार करने के लिये '**स्वायत्त मानव**' के रूप में प्रतिष्ठित रहना, विवाहाधिकार तन, मन, धन का सदुपयोग–सुरक्षा करने में प्रतिज्ञा का आधार है। (**अध्याय:6, पेज नंबर:149**)
- संबंधों के विशालता विधि को ध्यान में रखते हुए विवाह सम्बन्ध में किसी भी मानवीयतापूर्ण परिवार में पले हुए **स्वायत्त मानवाधिकार** सम्पन्न नर–नारी का विवाह सम्बन्ध घटित होना मानव कुल सहज नैसर्गिक है। इसकी स्वीकृति हर नर–नारी में अवधारणा के रूप में होना आवश्यक है।

  ऊपर कहे प्रतिज्ञा कार्यों में यह तथ्य उद्घाटित हुआ ही है कि **स्वायत्त मानवाधिकारोपरान्त** ही विवाह घटना का उपयोगी और सार्थक होना पाया जाता है। **स्वायत्त मानव** का पहचान स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वावलंबन सहज प्रमाण के आधार पर सम्पन्न होना व्यवहारिक है। ऐसी अर्हता को शिक्षा–संस्कार परंपरा में प्रावधानित रहना मानव सहज वैभव में से एक प्रधान आयाम है। इस प्रकार चेतना विकास मूल्य शिक्षा सम्पन्न शिक्षित व्यक्ति ही अध्ययनपूर्वक अपने में **स्वायत्तता** का अनुभव करने और सत्यापित करता है। मानवीयतापूर्ण शिक्षा, मानवीयतापूर्ण ज्ञान, दर्शन और आचरण सम्पूर्ण अध्ययनोपरांत किये जाने वाले हर सत्यापन को वाचिक प्रमाण के रूप में स्वीकारना नैसर्गिक व्यवहारिक आवश्यक मानव परंपरा में से प्रयोजनशील होना देखा गया है क्योंकि परस्पर सम्बोधन सत्यापन के साथ ही सम्बंध, कर्तव्य व दायित्वों की अपेक्षाएँ और प्रवृत्तियाँ परस्परता में अथवा हरेक पक्ष में स्वयं स्फूर्त होना पाया जाता है।(**अध्याय:6,पेज नंबर:150–151**)

- **स्वायत्त मानवाधिकार** के लिए 18 वर्ष की आयु तक सम्पन्न होने की व्यवस्था है। इसके उपरान्त परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होने के लिए चार वर्ष न्यूनतम रूप में होना आवश्यक है। इसमें हर अभिभावक, आचार्य, भाई–बहन, मित्र सबको प्रमाण देखने को मिलेंगे। इस अवधि के उपरान्त प्रधानत: अभिभावक, प्रौढ़, भाई–बहन, मित्रों की सम्मति विवाह में प्रयोजित होने वाले नर–नारी की प्रवृत्तियों का संगीत अथवा एक मानसिकता के आधार पर आचार्यों की सम्मति सहित विवाह संस्कार सम्पन्न होगा। यही मानव परंपरा में मानवीयतापूर्ण पद्धत्ति से मानव संचेतना सहित सम्पन्न होने वाला विवाह संस्कार उत्सव है। इसके लिये आयु विचार स्पष्ट हो गया। बाईस वर्ष के उपरान्त ही विवाह सम्पन्न होना अध्ययन विधि से स्पष्ट हो चुका है। इसी अवधि के साथ दायित्व, कर्तव्य और परिवार मानव का सम्पूर्ण प्रमाण प्रस्तुत करने की आवश्यकता और अवधियाँ स्पष्ट हो चुकी है। दूसरी विधि से स्वास्थ्य संबंध में सोचने पर भी शरीर–अंग–अवयव पुष्टि भी इसी आयु तक सहज ही सम्पन्न होना देखा गया है। (**अध्याय:6, पेज नंबर:152**)

- हर **स्वायत्त मानव**, परिवार मानव अपने आप में व्यवस्था कार्य विधियों के लिए तत्पर रहना अपेक्षित है ही। इसी आधार पर प्रयोजन का स्वरूप पुनश्च समीचीन सम्बंध–मूल्य–मूल्यांकन और परिवार व्यवस्था ग्राम परिवार व्यवस्था में भागीदारी से विश्व परिवार में भागीदरी है। यही प्रधान रूप में ध्यान में रहने की आवश्यकता है।**(अध्याय:6, पेज नंबर:155)**
- **स्वायत्ततापूर्ण** परिवार मानव अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सूत्र से जीता–जागता हुआ परम्परा में नर–नारी का समानाधिकार, मानवत्व पर समानाधिकार होना स्पष्ट हो चुकी है। ऐसा अधिकार अर्थात् मानवीयता रूपी अधिकार, कल्पनाशीलता का तृप्ति बिन्दु रूपी परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने में और कर्म स्वतंत्रता का तृप्ति बिन्दु के प्रमाण रूप में प्रामाणिकता पूर्वक स्वानुशासित होना, प्रमाणित करना ही है। इस मूल उद्देश्य को पीढ़ी से पीढ़ी में अर्पित करने के क्रम में सम्बन्ध– मूल्य–मूल्यांकन, उभयतृप्ति, तन–मन–धन रूपी अर्थ का सदुपयोग–सुरक्षा; स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य–व्यवहार करना ही सम्पूर्ण व्यवहार है। जिसके फलस्वरूप समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व हर परिवार में प्रमाणित होना ही मानव परंपरा है। इसी में हर नर–नारी भागीदारी को निर्वाह करना है। समानाधिकार का प्रयोजन यही है। इन प्रयोजनों का परम्परा में होना स्वाभाविक है हर व्यक्ति **स्वायत्त** होने के फलस्वरूप पराधीनता, परतंत्रता दोनों का उन्मूलन हुआ रहता है। इसके विपरीत परिवार मानव और व्यवस्था मानव के रूप में नित्य योजना हर नर–नारी के सम्मुख स्पष्ट रहता है। इसलिये विवाहोत्सव समय में पारितोष रूप में वस्तुओं का आदान–प्रदान स्वयं स्फूर्त विधि से जो कुछ भी मात्रा के रूप में हो पाता है, वही अधिकाधिक होना स्वाभाविक है। इस प्रकार विवाहोत्सव समय में आडम्बर के लिये किये जाने वाले व्यय अपने–आप संयमित होता है। सार्थक कार्यो में सदुपयोगी विधि से प्रयोजित हो पाता है। अतएव मानव परंपरा में विवाहोत्सव समय में लेन–देन की प्रतिज्ञा–प्रतिबद्धता की आवश्यकता नहीं है।**(अध्याय:6,पेज नंबर:155–156)**
- तथ्य :– मानवीयतापूर्ण विधि से अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी का होना प्रधान लक्ष्य है। इसी विधि में मौलिक अधिकार और इसी क्रम में मौलिक अधिकार का स्पष्टीकरण एक दूसरे को इंगित होता है, स्वीकृत होता है, जाँचने की विधि स्वयं स्फूर्त होता है। इसी क्रम में **स्वायत्त मानव** के वैभवों का परीक्षण जैसा– (1) स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करने का अधिकार, प्रक्रिया और प्रमाण, (2) प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलनाधिकार प्रक्रिया और प्रमाण और (3) व्यवहार में सामाजिक एवं व्यवसाय में स्वावलंबनाधिकार, प्रक्रिया और प्रमाण एक दूसरे को समझ में आता है। समझ में आने का तात्पर्य जानने–मानने–पहचानने–निर्वाह करने से है। ऐसे मानव ही परिवार मानव और व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होना सहज है। यही सम्पूर्ण स्वत्व स्वतंत्रता और अधिकारों का वैभव और विस्तार है। इस प्रकार कर्तव्य दायित्व ही समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी के रूप में अधिकार है।

इससे यह स्पष्ट हो गया है कि हर मानव चाहे नर हो चाहे नारी हो, स्वस्थ रहने के मापदण्ड अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व क्रम में **स्वायत्त मानव** के रूप में स्पष्ट किया जा चुका है। जिनमें ही मानवत्व रूपी स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकार को स्वयं स्फूर्त विधि से प्रमाणित होना पाया गया है। ऐसा **स्वायत्त मानव** स्वस्थ मानव परिवार परंपरा में, व्यवहार परंपरा में, उत्पादन परंपरा में, विनिमय परंपरा में, स्वास्थ्य–संयम परंपरा में, मानवीयता पूर्ण शिक्षा–संस्कार परंपरा में और न्याय–सुरक्षा परंपरा में भागीदारी को निर्वाह करना ही समग्र व्यवस्था में भागीदारी का

तात्पर्य है। यह समझदार परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था विधि से समाज रचना परिवार से ग्राम परिवार, ग्राम परिवार से विश्व परिवार तक और ग्राम स्वराज्य सभा से विश्व परिवार सभा तक इन सभी आयामों में भागीदारी का सूत्र, व्याख्या अग्रिम अध्यायों में स्पष्ट हो जाएगी। **(अध्याय:6,पेज नंबर:158–159)**

- शाकाहार सदा ही आवर्तनशीलता, ऊर्जा संतुलन, उर्वरक कार्यों में गुणवत्ता के आधार पर सूत्रित रहता है। कृषि कार्यों के आधार पर पशुपालन, पशुपालन के आधार पर कृषि कार्य में पूरकता स्वाभाविक रूप में देखा गया है। इसी के साथ–साथ मानवकृत वातावरण का संतुलन, नैसर्गिक संतुलन में भागीदारी भी सह–अस्तित्व सहज कार्यकलापों का एक अविभाज्य वैभव रहा है। ये सब पूरक विधि से ही प्रमाणित हो पाता है। हिंसा, शोषण और दोहन विधि से पूरकता, आवर्तनशीलता प्रमाणित नहीं हो पायी है। अतएव मानवीयतापूर्ण परंपरा **स्वायत्तता** पूरकता व आवर्तनशीलता का संतुलित संगीत विधि से ही समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व को प्रमणित करता है। यह सर्वमानव में स्वीकृत है। इस प्रकार हम मानव प्रतिफल के रूप में कृषि, पशुपालन, ग्राम शिल्प, हस्तकला, कुटीर उद्योग, ग्रामोद्योग और लघु–गुरु उद्योग पूर्वक सामान्याकांक्षा एवं महत्वाकांक्षा सम्बंधी वस्तुओं को श्रम नियोजन और सेवा पूर्वक प्रतिफल के रूप में पा सकते है। **(अध्याय:6,पेज नंबर:164–165)**
- तीसरे प्रकार से स्वधन, पुरस्कार के रूप में प्राप्त धन। मानवीयतापूर्ण परंपरा में श्रेष्ठता का सम्मान होना स्वाभाविक है। श्रेष्ठता का मूल्यांकन मानवीयतापूर्ण परंपरा में व्यवस्था में भागीदारी, **स्वायत्त मानव**, परिवार मानव और समग्र व्यवस्था में भागीदारी उसकी गति और श्रेष्ठता पुरस्कृत होना स्वाभाविक है। इसी के साथ–साथ स्वास्थ्य–संयम कार्यों में श्रेष्ठता, उत्पादन–कार्यों में श्रेष्ठता, विनिमय–कार्यों में श्रेष्ठता, मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार कार्यों में श्रेष्ठता का मूल्यांकन और पुरस्कार मानव परंपरा में सहज है। इन किसी भी विधाओं का मूल्यांकन और पुरस्कार मानव परंपरा में सहज है। इन किसी भी विधाओं में श्रेष्ठता का सम्मान ग्राम परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक किसी स्तरीय परिवार सभा में श्रेष्ठ व्यक्ति का सम्मान किया जाना मानव परंपरा का ही सम्मान है। इस विधि से प्राप्त वस्तु स्वधन में गण्य होता है। **(अध्याय:6,पेज नंबर:165–166)**
- धन के साथ उदारता – उदारता का उत्तरोत्तर जागृति की ओर तन, मन, धन रूपी अर्थ को नियोजित करना ही है। हर पीढ़ी, अग्रिम पीढ़ी को अपने से श्रेष्ठ होने का कामना करता ही है। हर स्थिति, हर गति, हर देशकाल में मानव अपने श्रेष्ठता को जागृति क्रम, जागृति, जागृतिपूर्णता और उसकी निरंतरता विधि से ही प्रमाणित करता है। जागृति और जागृतिपूर्णता **स्वायत्त** मानवीयता सहज पारंगत प्रमाण ही होना पाया जाता है। जागृति क्रम **स्वायत्त मानव** पद प्रतिष्ठा पर्यन्त निश्चित है। इस क्रम में परंपरा जागृत रहना एक अनिवार्य स्थिति रहती है। तभी मानवीयता पूर्ण परंपरा सहज सार्थकता प्रमाणित होती है।**(अध्याय:6,पेज नंबर:168–169)**
- जागृत मानव संबंधों में निहित मूल्य निरंतर निर्वाह होता है। समझदारी पूर्वक मूल्यांकन में उभयतृप्ति सदा–सदा ही रहता है। यह **स्वायत्त मानव** पूर्वक परिवार मानव सहज विधि से सहज होना पाया जाता है। सदा–सदा के लिये परिवार में सम्बन्ध–मूल्य–मूल्यांकन–उभयतृप्ति होती है। परिवार की परिभाषा भी है परस्पर सम्बन्धों को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, मूल्यांकन करते हैं और उभयतृप्ति पाते हैं। यही परिवार का आधार बिन्दु है। अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का सूत्रपात "परिवार मानव" पद ही है। परिवार व्यवस्था सार्वभौम व्यवस्था के लिये सूत्र है। परिवार रचना स्वयं अखण्ड समाज रचना का सूत्र है। जागृत परिवार मानव परिवार सहज आवश्यकता के लिये समझदारी से अपनाया उत्पादन–कार्य के लिये एक–दूसरे के पूरक होना पाया जाता है। इस

विधि से हर परिवार में समाधान, समृद्धि प्रमाणित होती है, अभय सह–अस्तित्व का सूत्र समाया रहता है। इसे प्रमाणित करने की आवश्यकता क्रम में अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का ताना–बाना, इसलिये बना है कि समाज ही व्यवस्था और व्यवस्था ही समाज को संतुलित बनाये रखता है। परिवार क्रम विधि से समाज रचना, सभा क्रम में व्यवस्था गति स्पष्ट हो जाता है। जैसे परिवार ही **स्वायत्त मानवों** का संयुक्त अभिव्यक्ति होना स्पष्ट किया जा चुका है। हर नर–नारी **स्वायत्त** पद में ही परिवार मानव अर्हता, स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकार को प्रमाणित करते हैं।

**स्वायत्त मानव** पंरपरा में सभा क्रम, परिवार क्रम, 10–10 की संख्या में सहज ही पहचाना जाता है। सर्वमानव **स्वायत्त मानव** रूप में अपने प्रतिष्ठा को जानने–मानने, पहचानने–निर्वाह करने का सौभाग्य मानवीयतापूर्ण शिक्षा परंपरा में, से नित्य गति के रूप में समीचीन रहता है। सह–अस्तित्व विधि से व्यवस्था को, जागृति विधि से परिवार को पहचानना, निर्वाह करना मानव सहज आवश्यकता व वैभव है। अस्तित्व सहज रूप में ही सह–अस्तित्व वर्तमान है। यथा पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था, इसी धरती पर नियति क्रम विधि से प्रमाणित है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि जागृति का धारक–वाहकता प्रत्येक मानव का जागृति सहज स्वत्व है; और सह–अस्तित्व सहज वैभव है। इस प्रकार अस्तित्व सहज व्यवस्था को जानना–मानना–पहचानना, निर्वाह करना ज्ञानावस्था सहज जागृत मानव से ही प्रमाणित होती है। जागृति सहज विधि से ही समाज रचना स्वाभाविक होता है अथवा होने वाला स्वरूप है। होना वर्तमान ही है। वर्तमान की निरंतरता है। इसलिये व्यवस्था एवं समाज की निरंतरता है। सभा क्रम में निर्वाचन विधि से सम्पन्न होता है। परिवार रचना अर्थात् अखण्ड समाज रचना विधि सम्बन्धों की पहचान विधि से सम्पन्न हो जाता है। यथा एक परिवार में दस **स्वायत्त मानवों** के सहभागिता को पहचाना जाता है। जो परस्परता में सम्बन्ध मूल्य–मूल्यांकन–उभयतृप्ति पूर्वक रहते हैं, परिवारगत उत्पादन कार्य में परस्पर पूरक होते हैं यह सर्ववांछित स्वरूप **स्वायत्त मानव** जागृत सहज वैभव के रूप में पाया जाता है। सह–अस्तित्व सहज प्रमाण के रूप में एक से अधिक व्यक्तियों का होना भी प्रमाणित होता है। इसीलिये दस व्यक्तियों का होना संख्या के रूप में बतायी जाती है, घटना के रूप में यह संख्या ज्यादा कम हो सकता है। क्योंकि मानव संख्या के अर्थ में सीमित नहीं है किंवा कोई भी वस्तु संख्या के रूप में सीमित नहीं है क्योंकि हरेक–एक रूप, गुण, स्वभाव, धर्म सहज वैभव है, अविभाज्य है। गणित केवल रूप सीमावर्ती गणना है। आंशिक रूप में गुण (गति) का भी गणना सम्पन्न होता है। धर्म, स्वभाव और मध्यस्थ गुण (गति) का गणना संभव ही नहीं है। अतएव गणित विधि के साथ गुण और कारण विधि से मानव अपने भाषा को इनके अविभाज्य विधि से समृद्ध बनाने की आवश्यकता है। इन तीनों विधि से ही हर वस्तु को, उन–उनके सम्पूर्णता को समझना सहज है। हर वस्तु अपने सम्पूर्णता में रूप, गुण, स्वभाव, धर्म का वैभव है। ऐसे सम्पूर्णता का महिमा ही है प्रत्येक अपने 'त्व' सहित व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदार है। **(अध्याय:6,पेज नंबर:172–174)**

- जागृत मानव परंपरा में पीढ़ी से पीढ़ी किताब के बोझ से छुटकारा अथवा कम होने की प्रणाली बनेगी क्योंकि जागृतिपूर्ण परंपरा में समझ के करो विधि पूर्णतया प्रभावशील रहता है। इसी के साथ समझ में "जीने दो जीयो" वाला सूत्र भी सहज ही चरितार्थ होता है। समझने का मूल स्रोत, पहला स्रोत जिस परिवार में जो शिशु अर्पित रहता है वही परिवार सर्वाधिक जिम्मेदार होता है। इस तथ्य पर हम सुस्पष्ट हो चुके हैं कि हर **स्वायत्त मानव** परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होता है। यही जागृत मानव प्रतिष्ठा है। यह मौलिक अधिकार में गण्य है। ऐसे जागृत परिवार में अर्पित हर संतान के लिये जागृति सहज शिक्षा–संस्कार के लिये हर अभिभावक पर्याप्त होना पाया जाता है। शिशुकाल में आज्ञापालन–अनुसरण विधि हर शिशुओं में प्रभावशील रहता है। यही अपने को अर्पित करने का साक्ष्य है। अर्पित स्थिति में हर सम्बोधन, हर प्रदर्शन, हर प्रकाशन अनुकरण योग्य रहता ही है। इसी अवस्था में जागृति क्रम में संयोजित करना ही संस्कार–शिक्षा का तात्पर्य है।(**अध्याय:6,पेज नंबर:178–179**)
- हर परिवार मानव में जागृति का प्रभाव, जागृति का वैभव मुखरित रहता ही है। इसी आधार पर हर अभिभावक शिशुकाल से ही जागृतिकारी संस्कारों को स्थापित करने में सफल होते ही हैं। यह हर जागृत नर–नारी का कर्तव्य भी है, दायित्व भी है। इससे यह स्पष्ट है हर मानव अभिभावक पद को पाने से पहले **स्वायत्त**पूर्ण रहना एक आवश्यकता है और परिवार मानव के रूप में प्रमाणित रहना सर्वोपरि अनिवार्यता है ही।(**अध्याय:6,पेज नंबर:179**)
- जागृत परंपरा में ही जनसंख्या नियंत्रण स्वाभाविक रूप में होता है अर्थात् जागृत मानव स्वयं स्फूर्त विधि से नियंत्रित होता है। समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व सहज प्रमाण  परंपरा रूपी मानवीयतापूर्ण परिवार प्रयोजन और आवश्यकता का संतुलन बनाए रखने में सक्षम होता है। जनसंख्या, उसके लिये मानसिकता, आवश्यकता और प्रयोजन के साथ ही संतुलित होना संभव है। जागृति का यही देन है। सम्पूर्ण आवश्यकताएँ प्रयोजनों की कसौटी में परीक्षित प्रमाणित होना ही जागृति का साक्ष्य है। जीवन सहज रूप में जागृति नित्य वर है। वर का तात्पर्य जिसके बिना सुखी होने का कोई और विकल्प ही नहीं है। इसी क्रम में जीवन जागृतिपूर्ण विधि से ही सुख और उसका निरंतरता उत्सव से उत्सवित रहता है। इसके साक्ष्य में यह भी प्रतिपादित हो चुका है कि समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व हर परिवार मानव में प्रमाणित रहता ही है। क्योंकि हर परिवार मानव **स्वायत्त** और जागृत रहना, जागृति परंपरा सहज वैभव और उपलब्धि है। यही नित्य उत्सव का भी आधार है।(**अध्याय:6,पेज नंबर:180**)
- अखण्ड समाज का अर्थ–जागृत मानव परंपरा में वैर–विहीन परिवार ही है। दूसरी भाषा में समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व पूर्ण परिवार। अभयता स्वयं में एवं वर्तमान में विश्वास ही है। वर्तमान में विश्वास **स्वायत्त मानव** का स्वत्व, स्वतंत्रता अधिकार में होना पाया गया है। यह स्पष्ट हो चुका है कि **स्वायत्त मानव** ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को भले प्रकार से निभाता है।(**अध्याय:6,पेज नंबर:184**)
- मानव परंपरा में जीवन जागृति का प्रमाण व्यवहार में ही सुलभ होना पाया गया है। फलस्वरूप परंपरा में जागृति का प्रभाव वैभवित रहना सहज है। यह सर्वमानव सहज अपेक्षा, आवश्यकता है। जागृत मानव ही जागृति परम्परा को अनुप्राणित करने में समर्थ और सार्थक हो पाता है और जागृत मानव परम्परा में मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार सम्पन्न हर व्यक्ति **स्वायत्त** होना और ऐसे **स्वायत्त मानव** ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना स्पष्ट हो चुका है। परिवार मानव अपने में समाधान समृद्धि सम्पन्न होना भी स्पष्ट हुआ है। इस आशय की स्वीकृति सर्वमानव में होना पाया जाता है। ऐसा परिवार अर्थात् मानवीयतापूर्ण परिवार में हर **स्वायत्त मानव** सम्बन्धों को पहचानते हैं,

मूल्यों का निर्वाह करते हैं, उभय तृप्ति पाते हैं। सम्बन्धों को सामान्य रूप में सम्बोधन सहज परंपरा, प्रत्येक भाषा में प्रकारान्तर से स्पष्ट हुई है। पहले से यह बात भी स्पष्ट हुई है कि प्रत्येक सम्बन्ध का आशय फलस्वरूप में उसका वैभव भी अभिहित हुआ है। **(अध्याय: 6,पेज नंबर:188 –189)**

- हर सम्बोधन में अपेक्षाएँ समाहित रहना पाया जाता है। हर सम्बन्धों के सम्बोधन प्रक्रिया में जागृति की अपेक्षा रहता ही है। उसके साथ तीन सम्बन्ध ही देखने को मिला। ये तीन सम्बन्ध मानव सम्बन्ध, नैसर्गिक सम्बन्ध, और व्यवस्था सम्बन्ध हैं। मानव सम्बन्ध में अपेक्षाएं शरीर पोषण–संरक्षण, समाजगति की अपेक्षाएँ प्रकारान्तर से समायी रहती है। पोषणापेक्षा–पोषण प्रवृत्तियाँ तन, मन (जीवन) और धन, के सम्बन्धों में अथवा तन, मन (जीवन) और धन रूपी तथ्यों का पोषण, संरक्षण अपेक्षा और प्रवृत्ति मानव सहज गति होना पाया जाता है। यथा–

1. जागृत मानव अन्य की जागृति के लिये प्रवृत्त रहता है।
2. स्वस्थ मानव अन्य के स्वस्थता के लिए प्रयत्नशील रहता है।
3. समृद्धिशील मानव अन्य के समृद्धि सम्पन्नता में सहायक होने के लिये प्रवृत्तशील रहता है।
4. न्याय प्रदायी क्षमता सम्पन्न मानव, अन्य को न्याय सुलभ होने के लिये प्रवृत्तिशील रहता है।
5. किसी उत्पादन–कार्य में पारंगत मानव अन्य को पारंगत बनाने के लिये प्रवृत्तिशील रहता है।
6. मानव स्वयं व्यवस्था में जीता हुआ समग्र व्यवस्था में भागीदारी करते हुए अन्य को व्यवस्था में भागीदारी के लिये प्रेरित करने में प्रवृत्तिशील रहता है।

इस विधि से हर प्रौढ़–पारंगत, **स्वायत्त मानव** अपने अर्हता के प्राप्तियों को स्थापित करने में प्रवृत्तिशील रहता है। मानव अपने परम्परा बनाने में प्रवृत्तिशील है चाहे यह अमानवीयता के सीमा में हो या मानवीयता–अतिमानवीयता के रूप में क्यों न हो ? **(अध्याय:6,पेज नंबर:192–193)**

- जागृत परम्परा में मानव ही सम्पूर्ण आयाम, कोण, दिशा व परिप्रेक्ष्य सर्व देशकाल में जागृत शिक्षा यथा अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन रूपी जीवन ज्ञान सहज परम ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सहज सह–अस्तित्व रूपी परम दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचरण रूपी परम आचरण, ज्ञान–विज्ञान विवेक सम्मत समाधानपूर्ण शिक्षा–संस्कार सुलभ होता है। जागृति सहज मानवीयतापूर्ण आचरण और मानव सहज परिभाषा के अनुरूप शास्त्रों का प्रणयन स्वाभाविक रूप में ही है। आवर्तनशील अर्थशास्त्र अपने सह–अस्तित्व सहज सूत्रों के प्रतिपादन सहित व्याख्यायित हुआ है। यह परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन के लिये अपनाया हुआ उत्पादन कार्य में नियोजित श्रम, उत्पादन सहज उपयोगिता के आधार पर उसका मूल्यांकन फलस्वरूप श्रम विनिमय प्रणाली स्थापित होती है। यह समझ के करो विधि से सर्वसुलभ हो जाता है। इसी क्रम में यह व्यवहारवादी समाजशास्त्र भोगोन्मादी समाज शास्त्र के स्थान पर प्रस्तावित किया है।

इस विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो गया कि जीवन जागृतिपूर्वक ही हर मानव **स्वायत्तता** पूर्वक परिवार मानव होने का प्रमाण सहित स्वयं में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का निर्वाह करता है। जीने की कला दूसरे विधि से मानवीयतापूर्ण आचरण विधि मानव सहज परिभाषा क्रम से ही मानवीयता का व्याख्या सहज ही सार्थक

हो जाता है। सार्थक होने का तात्पर्य अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था क्रम में भागीदारी है। अखण्ड समाज सूत्र परिवार विधि से सार्थक होना पाया जाता है। परिवारों का स्वरूप और विशालता को दश सोपानों में स्पष्ट किया गया है। इसी के साथ–साथ दश सोपानों में सभा–स्वरूप व्यवस्था कार्य, कर्तव्य, दायित्व को स्पष्ट किया है। परिवार क्रम में मूल्य, चरित्र, नैतिकता अविभाज्यता को सहज ही स्पष्ट किया जा चुका है। दश सोपानीय समाज रचना और व्यवस्था गति अपने–आप में एक दूसरे को संतुलित करने के अर्थ से हम अभिहित होते हैं। जैसेः– परिवार– जिसका सूत्र सम्बन्ध मूल्य, मूल्यांकन, उभय–तृप्ति और परिवारगत उत्पादन–कार्य में पूरकता फलस्वरूप परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन है। परस्पर परिवार व्यवस्था में विनिमय एक अनिवार्य कार्य है। इसी के साथ सीखा हुआ को सिखाने, किया हुआ को कराने, समझा हुआ को समझाने का कार्य प्रणाली सदा–सदा जागृत मानव पंरपरा में वर्तमान रहता ही है। इसी क्रम में सर्वमानव सुख, सर्वमानव शुभ और सर्वमानव समाधान सर्वसुलभ होता ही रहता है। इस स्थिति को पाना सर्वमानव का अभीप्सा है। अतएव सुलभ होने का मार्ग सुस्पष्ट है। **(अध्याय:6,पेज नंबर:195–197)**

- माता–पिता :– सम्बन्धों का क्रम पहले सूची में प्रस्तुत किया जा चुका है। उसमें से पहला सम्बन्ध माता–पिता और पुत्र–पुत्री संबंध है। हर शिशु, हर वृद्ध जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में ही होना देखा गया है। शरीर विधा से मानव परंपरा की निरंतरता के लिये एक शरीर रचना वह भी वंशानुगत विधि से सम्पन्न होना पाया जाता है। हर संतान के लिए माता–पिता का सम्बन्ध इसी आधार पर होना पाया जाता है। इसके अनंतर शरीर संरक्षण, पोषण के आधार पर माता–पिता के सम्बन्धों को पहचाना गया है। यह पोषण और संरक्षण रूपी अपेक्षा शिशुकालीन संबोधन में ही निहित रहना पाया जाता है। जैसे ही शिशुकाल से कौमार्य अवस्था शरीर के आयु के अनुसार गणना हो पाता है ऐसी स्थिति में पुत्र–पुत्री के सम्बोधन में भी अपेक्षाएँ आरंभ होते हैं। ये अपेक्षाएं मानवीयतापूर्ण सभ्यता, संस्कृति, भाषा के आधार पर होना पाया जाता है। माता–पिता शिशुकाल में शिशु से कोई अपेक्षा नहीं करते। यह सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है। जैसे ही शिशु काल से यौवन काल आता है, (शरीर के आधार पर ही इस समय को पहचाना जाता है), तब तक माता–पिता की अपेक्षाएँ और बढ़ जाती हैं विशेषकर जीवन जागृति सहज संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था के अनुरूप देखना चाहते हैं। यह घटित होना सफलता का द्योतक है। इसी के साथ मानवीय शिक्षा–संस्कार जुड़ा ही रहता है। फलस्वरूप हर अभिभावकों से अपेक्षित अपेक्षाएँ सभी संतानों में सफल होने की स्थिति निर्मित हो जाती है। इसका कार्यसूत्र मानवीय शिक्षा–संस्कार सुलभ होना और उसका मूल्यांकन, परामर्श, प्रोत्साहन परिवार में हो पाना, मानवीयतापूर्ण परंपरा में सहज हो जाता है। इसका स्वरूप अर्थात् हर विद्यार्थी का स्वरूप शिक्षा–संस्कार काल में ही **स्वायत्त मानव** के रूप में परिणित और परिवार में प्रमाणित हो जाता है। इसलिये परिवार में **स्वायत्तता** का अनुभव सहज हो जाता है।**(अध्याय:6,पेज नंबर: 199–201)**
- जागृत मानव परंपरा में हर अभिभावक **स्वायत्त** रहता ही है। ऐसा जागृत अभिभावक अपने संतान में जागृति को अथवा जागृति सहज कार्य–व्यवहार को प्रमाणित करता हुआ देखना चाहते हैं। यह स्वाभाविक है। यही परम संगीतमय कार्यक्रम का आधार होता है और सर्वशुभ कार्यों में भागीदारी निर्वाह करने में सहज होता है। इसी क्रम में शरीर पोषण–संरक्षण  का फलन समाज गति रूप में अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करने में सहज होता है।**(अध्याय:6,पेज नंबर:201)**

- हर जागृत, **स्वायत्त** परिवार मानव ही अभिभावक के रूप में होना स्वाभाविक है अथवा माता–पिता के रूप में होना स्वाभाविक है। ऐसे अभिभावकों में उदारता और दयापूर्ण कार्य–व्यवहार स्वाभाविक रूप में बना रहता है। मानव अपने **स्वायत्तता** के साथ ही ऐसी अर्हता से सम्पन्न हुआ रहता है। परिवार में समाधान और समृद्धि वैभव के रूप में रहता ही है। ऐसा वैभव हर परिवार में मानवीयतापूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति से सर्वसुलभ हो जाता है। इस क्रम और विधि से मानव परम्परा में कोई विपन्नता का कारण शेष नहीं रह जाता। परिवार मानव के स्वरूप में यह वैभव सदा–सदा प्रमाणित रहता ही है। न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता हर परिवार मानव का प्रमाण अथवा अभिव्यक्ति है। समृद्धि, समाधान के योगफल में ही मानव परंपरा का वैभव प्रमाणित होता है। इससे कम में सम्भावना ही नहीं, इससे अधिक की आवश्यकता ही नहीं। समाधान–समृद्धि सहज हर अनुभव, के अनुरूप हर अभिभावक अपने संतानों में संस्कार डालने में समर्थ होते ही हैं। क्योंकि समाधान–समृद्धि, दिशा और प्रक्रिया से हर अभिभावक गुजरे रहते हैं फलस्वरूप उसी दिशा में संस्कार आरोपण सम्बोधन नाम से चलकर अवधारणा पर्यन्त सूत्रित होना, रहना, करना जागृति सहज गति है। यही प्रमुख स्रोत है जो पीढ़ी से पीढ़ी तृप्त होने का संधान है। संधान का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में अवधारणाओं को स्थापित करने और होने से है। यही पीढ़ी से पीढ़ी के मध्य तृप्ति स्रोत है। इसी स्रोत का धारक वाहक हर अभिभावक होना जागृत परंपरा का वैभव है। **(अध्याय:6,पेज नंबर:202–203)**
- हर आचार्य **स्वायत्तता** विधि से परिवार में प्रमाणित रहते ही हैं। यही सर्वमानव का वांछित, आवश्यक और नित्य गति रूप जो अपने–आप में सुख–सुन्दर–समाधान है जिसका फलन समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व है। जिन प्रमाणों के आधार पर जीवन तृप्ति ही सुख, शांति, संतोष, आनन्द के नाम से ख्यात है। यही भ्रम–मुक्ति गतिविधि प्रमाण के रूप में हर विद्यार्थी के रूप में समीचीन रहता है। इस प्रकार भ्रम–मुक्त परंपरा का स्वरूप, कार्य, महिमा, प्रयोजन प्रमाण के रूप में रहना ही शिक्षा–संस्कार परंपरा का वैभव अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में गतिशील रहता है।**(अध्याय:6,पेज नंबर:214)**
- प्रत्येक **स्वायत्त आचार्य** व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी और व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण होना देखा जाता है। फलस्वरूप हर विद्यार्थी ऐसे सुखद स्वरूप में जीने के लिये प्रवृत्त होना स्वाभाविक है। जागृत मानव सार्वभौमिकता के अर्थ में **स्वायत्त मानव** के रूप में ही होना देखा गया। **स्वायत्त मानव** का शिक्षा–संस्कार विधि से प्रमाणित होना और **स्वायत्त मानव** का प्रमाण परिवार में होना, परिवार मानव का प्रमाण व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में स्पष्ट किया जा चुका है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट हो चुका है कि सार्वभौम व्यवस्था का संतुलन अखण्ड समाज रचना से और अखण्ड समाज का संतुलन सार्वभौम व्यवस्था से है। इस विधि से शिक्षण संस्था (अध्ययन केन्द्रों) का स्वरूप अभिभावकों से नियंत्रित रहना और अध्ययन केन्द्र (शिक्षण संस्थाओं) का प्रयोजन कार्यकलाप जागृतिपूर्ण आचार्यों से नियंत्रित रहना देखा गया है। इसका तात्पर्य यही है हर अध्ययन केन्द्र में आचार्यों को व्यवसाय में स्वावलंबी रहने के लिये मानवीय आवश्यकता संबंधी वस्तुओं का उत्पादन करने के लिये योग्य व्यवस्था बनी रहेगी। उसे सदा–सदा बनाये रखना ही अभिभावकों से नियंत्रित अध्ययन केन्द्रों का स्वरूप है। अध्ययन केन्द्र में स्वाभाविक ही आवश्यकतानुसार भवन, अध्ययन और अध्यापन के लिये आवश्यकीय साधन और आचार्यों को व्यवसाय में स्वालंबन को प्रमाणित करने योग्य कृषि संबंधी, अलंकार संबंधी, गृह निर्माण संबंधी, पशुपालन संबंधी, ईंधन नियंत्रण संबंधी, ईंधन सम्पादन संबंधी, ईंधन नियोजन संबंधी, दूरश्रवण संबंधी,

दूरगमन संबंधी और दूरदर्शन संबंधी यंत्र–उपकरणों को निर्मित करने योग्य साधनों को बनाये रखना ही व्यवसाय में स्वालंबन का प्रमाणस्थली के रूप में उपयोगी रहेगा।**(अध्याय:6,पेज नंबर:214–215)**

- अध्यापन कार्य के लिये धन–वस्तु को विद्यार्थियों को शिक्षित, प्रशिक्षित, अध्ययनपूर्ण कराने के लिए एकत्रित की जाएगी। इसे अभिभावक समुदाय तय करेंगे, एकत्रित करेंगे। भवन, प्रयोग सामग्री, साधनों को संजोए रखेंगे। इसका नियंत्रण, परिवर्धन, परिवर्तन, नवीनीकरण आदि कार्यों में स्वतंत्र रहेंगे। आचार्य कुल विद्यार्थियों को परिवार–मानव और व्यवस्था–मानव में प्रमाणित होने योग्य **स्वायत्त मानव** का स्वरूप प्रदान करेंगे जो स्वयं अपने मौलिक अधिकारों का प्रयोग करने में समर्थ हो जायेगा एवं दूसरों को कराएगा, करने के लिये सम्मति देगा।**(अध्याय:6,पेज नंबर:215–216)**
- अध्ययन संस्थाओं की अभीप्सा, स्वरूप, लक्ष्य, सामान्य क्रिया प्रणाली स्पष्ट हो चुकी है। मानव कुल में समर्पित संतानों को शिक्षा–संस्कार की अनिवार्यता होना पहले से स्पष्ट है। इसे सार्थक और सुलभ बनाने के क्रम में परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को दस सोपानों में स्पष्ट किया जा चुका है। व्यवस्था की निरंतरता में प्रधान आयाम मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार, पद्धति, प्रणाली, नीति ही है। शिक्षित हर व्यक्ति **स्वायत्त** होना सहज है। **स्वायत्तता** ही शिक्षित और संस्कारित व्यक्ति का प्रमाण है। ऐसी **स्वायत्तता** सर्वमानव स्वीकृत तथ्य है। इसलिये सार्वभौम नाम प्रदान किये हैं। सार्वभौम का तात्पर्य सर्वमानव स्वीकृत है, स्वीकृति योग्य है। मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार पूर्वक **स्वायत्त मानव** का स्वीकृति परिवार और व्यवस्था में भागीदारी करने के लक्ष्य से स्वीकृत होता ही है। ऐसे सार्वभौम रूप में स्वीकृत मानव ही मौलिक अधिकारों का प्रयोग करते हुए अपने को समाधानित और वातावरण को समाधानित करने में निष्ठान्वित रहना स्वाभाविक है। उसके लिये दायित्व और कर्तव्यशील रहना स्वाभाविक है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर हर परिवार में समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व वर्तमान में प्रमाणित होता है। व्यवस्था, परिवार और समाज सदा ही वर्तमान में, से, के लिये अपने त्व सहित वैभवित होना है। **(अध्याय:6,पेज नंबर:216–217)**
- मानवत्व सहित, मानवत्व के लक्ष्य में, **स्वायत्त मानव** शिक्षापूर्वक स्वरूपित होता है। जिसका प्रमाण परिवार, ग्राम परिवार, विश्व परिवार में भागीदारी के रूप में और परिवार सभा, ग्राम परिवार सभा और विश्व परिवार सभा में भागीदारी को निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होता है। यही परिवार मूलक स्वराज्य गति का स्वरूप है।**(अध्याय:6,पेज नंबर:217)**
- जागृति पूर्णता एवं उसकी निरंतरता ही गुरूता का तात्पर्य है। यह जागृतिपूर्णता का धारक वाहकता और उसकी महिमा है। इसी के साथ हर मानव में जीवन सहज रूप में जागृति स्वीकृत रहता ही है। जागृति सहज ही अभिव्यक्ति क्रम में आरूढ़ रहता है। आरूढ़ता का तात्पर्य स्वजागृति के प्रति निष्ठान्वित रहने से है। और स्व–जागृति के प्रति निष्ठा स्वयं के प्रति विश्वास का द्योतक है। स्वयं के प्रति विश्वास मूलतः **स्वायत्त मानव** में प्रमाणित रहता ही है। **स्वायत्त मानव** का स्वरूप और मूल्यांकन मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार का द्योतक होना पाया जाता है। दूसरे भाषा में प्रमाण होना पाया जाता है। यही सफल, सार्थक, वांछित और अभ्युदयशील शिक्षा है। शिक्षा का परिभाषा भी इसी के समर्थन में ध्वनित होता है। शिक्षा का परिभाषा अपने में शिष्टतापूर्ण दृष्टि का संकेत करता है।**(अध्याय:6,पेज नंबर:221–222)**

- सुख ही मानव धर्म होना पाया जाता है और ख्यात भी है। ख्यात का तात्पर्य सर्वस्वीकृत है। यह समाधानपूर्वक ही सर्वसुलभ होना होता है। समाधान सहज नित्य गति सर्वदेशकाल में सम्पूर्ण दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्यों में और आयामों में जागृति सहज मानव में, मानव से, मानव के लिये दृष्टव्य है। अर्थात् हर जागृत मानव समाधान को देखने योग्य होता ही है। देखने का तात्पर्य समझने से ही है। समाधान का गति रूप सदा–सदा मानव परंपरा में ही नियम और न्याय सहज तृप्ति बिन्दु के रूप में पहचाना जाता है। नियम अथवा सम्पूर्ण नियम नैसर्गिकता और वातावरण के साथ प्रभावशील रहना पाया जाता है। न्याय मानव सहज संबंध/मूल्यों के रूप में वर्तमान होना पाया जाता है। सम्पूर्ण मूल्यों का अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन जीवन जागृति का ही महिमा है। दूसरे भाषा से जीवन तृप्ति का ही महिमा है। जीवन तृप्ति; जागृति पूर्णता और उसकी निरंतरता में ही देखने को मिलता है। यह सर्वमानव का अपेक्षा है। हर परिवार में जागृत अभिभावक जागृति पूर्ण शिक्षा संपन्न युवा पीढ़ी में सामरस्यता अपने–आप परिवार मानव सहज विधि से प्रमाणित होता है। ऐसे सफल परिवार का पहचान, मूल्यांकन सहित गतित रहना ही मानव परंपरा की आवश्यकता, गरिमा, महिमा सहित प्रतिष्ठा है। जागृति पूर्ण मानव ही गुरू पद में वैभवित होना स्वाभाविक है। जागृति पूर्ण परंपरा में ही हर मानव संतान में जागृत पद प्रतिष्ठा को स्थापित करना सहज है। इस विधि से जागृति परंपरा के अर्थ में शिक्षा–संस्कार सार्थक होना पाया जाता है जिसकी अपेक्षा भी सर्वमानव में होना भी सहज है। शिक्षा–संस्कार, उसकी सफलता का मूल्यांकन **स्वायत्त मानव**, परिवार मानव के रूप में शिक्षा अवधि में ही मूल्यांकित हो जाता है। मूल्यांकन का आधार भी यही दो मापदण्ड है।**(अध्याय:6,पेज नंबर: 223–224)**
- राज्य और धर्म अविभाज्य रूप में वर्तमान होना देखा गया है। स्वराज्य को मानव सहज मानवत्व केन्द्रित व्यवस्था के रूप में पहचाना गया। मानवत्व अपने आप में मानव का परिभाषा, आचरणों में जीवन जागृतिपूर्वक प्रमाणित होना देखा गया है। इसके मूल में अर्थात् जागृति के मूल में जीवन ही दृष्टा, कर्ता, भोक्ता रूप में होना पूर्णतया देखा गया, इसी कारणवश मानव अपने परिभाषा के रूप में, आचरण के रूप में होने के फलस्वरूप व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी का कार्यकलाप परंपरा के रूप में सदा–सदा के लिये होना समीचीन है। मानव जागृति भी समीचीन तथ्यों में, से, के लिये होना स्पष्ट है। इसी विधि से व्यवस्था धर्म और राज्य का संयुक्त स्वरूप होना स्पष्ट है; क्योंकि व्यवस्था में भागीदारी क्रम में परिवार और व्यवस्था समाहित रहता ही है। परिवार विधि से विश्व परिवार तक समाज रचना स्वरूप, परिवार सभा व्यवस्था से विश्व परिवार सभा तक सभा रचना का होना सहज है। सभा और परिवार रचना का सार्थकता, आवश्यकता और प्रमाण केवल व्यवस्था ही है। इसको ऐसा भी कहा जा सकता है परिवार सहज रूप में भी व्यवस्था है। सभा सहज रूप में भी व्यवस्था प्रमाणित होता है। तीसरे विधि से हर परिवार व्यवस्था अपेक्षा और आवश्यकता से संपृक्त रहता है। हर सभा व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाणों को प्रस्तुत करना चाहता है। इस प्रकार सभा, परिवार–सभा व्यवस्था केन्द्रित होना अथवा व्यवस्था लक्षित होना पाया जाता है। इस प्रकार सभा ही परिवार, परिवार ही सभा के रूप में होना पाया जाता है। इन्हीं में भागीदारी क्रम में संपूर्ण संबंधों का विषद व्याख्या पहले हो चुका है। परिवार संबंधों में से एक संबंध के रूप में विवाह संबंध भी सफल होना अति आवश्यक है। यह हर परिवार मानव निर्वाह करता है और परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होने के लिए **स्वायत्त मानव** के रूप में मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार विधि से संपन्न होना देखा गया है। अतएव विवाह संबंध परिवार के रूप में प्रमाणित होना मौलिक आधार व अधिकार का एक आयाम है। जैसा अन्य संबंधों का निर्वाह भी मौलिक अधिकार के रूप में व्याख्यायित होता है। इस प्रकार हर विवाह संबंध मानवीयतापूर्ण

परिवार के साथ आयोजित होना एक स्वाभाविक क्रिया है। यह क्रिया विधि भी मानव में एकता का सूत्र को विशालता की ओर गतित होता है।(**अध्याय:6,पेज नंबर:231–232**)

- परिवार में **स्वायत्त मानव** का ही भागीदारी होना जागृत परम्परा सहज गतिविधि है। इसका संपूर्ण गति व्यवस्था सहज पाँचों आयामों में होना पाया जाता है। परिवार मानव ही व्यवस्था और समाज का बीज रूप होना देखा गया। **स्वायत्त मानव** जागृति पूर्ण परंपरा सहज शिक्षा–संस्कार का फलन के रूप में होना देखा गया। **स्वायत्त मानव** परिवार मानव के रूप में प्रमाण है। परिवार मानव ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का बीजरूप है यही मुख्य बिन्दु है। इसी आधार पर मौलिक अधिकारों का प्रयोग सर्व सहज अभिव्यक्ति संप्रेषणा, प्रकाशन, अनुभव, बोध, व्यवहार और व्यवस्था के रूप में स्पष्ट हो जाता है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि राज्य और धर्म एक दूसरे के पूरक होते हैं; समाज ही धर्म का स्वरूप है; व्यवस्था ही राज्य है; धर्म का संतुलन राज्य से, राज्य का संतुलन धर्म से होना स्पष्ट किया जा चुका है। धर्म का स्वरूप ही अखण्ड समाज है। अखण्ड समाज सूत्र से सूत्रित परिवार है। इस विधि से जागृत परिवार सूत्र से सूत्रित अखण्ड समाज है। इसी प्रकार परिवार अपने में एक व्यवस्था, प्रसन्नता और उत्साह का मुखरण है। ऐसी मुखरण समाधान–समृद्धि का फलन होना देखा गया है। निरंतर उत्साह समाधान और उसकी निरंतरता के आधार पर बहता रहता है। इसीलिये जागृत मानव इसे व्यक्त करने योग्य होता है। यह मौलिक अधिकार का ही मूल रूप है।(**अध्याय:6,पेज नंबर:241**)
- हर **स्वायत्त मानव** व्यवसाय में स्वावलंबी, व्यवहार में सामाजिक होने में पारंगत, कुशल और निपुण रहना पाया जाता है। पारंगत का तात्पर्य परस्पर मानव प्रकृति में जागृत सहज स्वभावों, गुणों, कार्य गति और व्यवहार गति और उसके परिणामों का आंकलन करने और उसका मूल्यांकन करने के अधिकार से इसके प्रयोग विधि से स्वयं प्रतिष्ठित होना पाया जाता है। (**अध्याय:6,पेज नंबर:245**)
- ...**स्वायत्त मानव** बनाम निपुणता, कुशलता, पांडित्य संपन्न मानव + प्राकृतिक ऐश्वर्य बनाम नैसर्गिकता + हस्तलाघव + मानसिकता का संयुक्त रूप में संपूर्ण उत्पादन मानव में, से, के लिये होना देखा गया है। हस्त लाघव का तात्पर्य सभी (पाँचो) ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय से निपुणता, कुशलता, पांडित्य रूपी कार्य करने से है। ज्ञानेन्द्रिय का तात्पर्य शब्दों को सार्थक निरर्थक रूप में विभाजित करने की क्रिया, सुनने; स्पर्श से कठोरता और मृदुलता को स्वीकारने की क्रिया, घ्राणेन्द्रियों से सुगन्ध और दुर्गन्ध को विभाजित करने की क्रिया, रूपेन्द्रियों से सुरूप, कुरूप की विभाजन क्रिया; रसनेन्द्रियों से खट्टा–मीठा, चरचरा, खारा, कसैला और तीखा इन रूचियों को विभाजित करने की क्रिया। कर्मेन्द्रियों का तात्पर्य हाथ, पैर, मल–मूत्र द्वार और मुँह ये सब कर्मेन्द्रियों में गण्य होना पाया जाता है। हस्तलाघव क्रिया में निपुणता, कुशलता पूर्ण पांडित्य से संचालित पूरे शरीर के संपूर्ण अंग–अवयव सहित हाथ–पैर सटीक काम करने से बाकी सभी ज्ञानेन्द्रियों का संयोग कर्मेन्द्रियों के साथ संयोजित रहता ही है। इस विधि से हर व्यक्ति से श्रम प्राकृतिक ऐश्वर्य पर स्थापित होना देखा जाता है। इसमें यह भी देखा गया है – उत्पादन में भागीदारी, व्यवहार में मूल्यों का निर्वाह पूर्वक सामाजिक होने के लिए उपयोगिता–पूरकता प्रमाण है। दूसरी भाषा में – उत्पादन में भागीदारी, व्यवहार में सामाजिक होने का संतुलन तत्व और व्यवहार में सामाजिकता, व्यवसाय में स्वावलंबी होने का संतुलन तत्व इस प्रकार समाजिकता–स्वावलंबन पूरक होने का स्वरूप प्रमाणित होता है। ऐसे संतुलन कार्य में प्रवृत, रत, निष्ठान्वित रहना ही कायिक वाचिक, मानसिक, कृत–कारित अनुमोदित, जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति में क्रियारत रहने का सार्थकता है। यही अखंड समाज – सार्वभौम व्यवस्था का आधार सूत्र और बीज रूप है। व्यवहार क्रम में उत्पादन का सार्थकता अर्थात् प्रयोजन प्रमाणित होता

है। इस विधि से व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबन और इनमें परस्पर पूरकता अग्रिम उन्नति और विकास के लिये सीढ़ी दर सीढ़ी प्रमाणित होना मानव के लिए एक आवश्यकता, समीचीनता और सहजता है। सूत्र का तात्पर्य जागृति सहज नियम–नियंत्रण विधि से अधिकारिक रूप में दिखने वाला न्याय और नियम का संयोजन और उसकी निरंतरता से है। बीज रूप का तात्पर्य समाधानकारी सूत्र सम्मत कार्य प्रणाली और व्यवहार प्रणाली से है। यही सार्वभौम व्यवस्था और अखण्ड समाज को गति प्रदायी तत्व होना देखा गया है। इस प्रकार अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी हर मानव का मौलिक अधिकार होना पाया जाता है। मौलिक अधिकार का तात्पर्य जागृत मानव स्वयं स्फूर्त विधि से अपने कार्य–व्यवहार प्रणालियों को व्यवस्था सम्मत, समाधान सम्मत और प्रामाणिकता पूर्ण पद्धति से प्रस्तुत होने से है। **(अध्याय:6,पेज नंबर:245–247)**

- सम्बन्ध का तात्पर्य स्वयं में पूर्णता सहित हर मानव में पूर्णता के अर्थ में अनुबंधित रहना स्वाभाविक है। यह मानव में ही प्रमाणित होने वाला मौलिक अभिव्यक्ति है। यही ज्ञानावस्था का परिचायक है। इसी के साथ मानव को, इसकी अपेक्षा, आवश्यकता नियति सहज विधि से देखने को मिलता है। अर्थात् मानव संबंध के अनुरूप प्रयोजनों को प्रमाणित करने में निष्ठा स्वयं स्फूर्त होता है। अपेक्षाओं के अनुसार सार्थक होना, चरितार्थ होना ही सम्बन्धों का सम्पूर्ण प्रयोजन है। प्रयोजनों का सूत्र अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था, परिवार मानव और **स्वायत्त मानव** रूप में ही मानव परंपरा में देखने को मिलता है। यही प्रयोजनों का मूल रूप है। इसे ज्ञानावस्था का स्वरूप भी कहा जा सकता है। जागृत मानव परंपरा में यह सार्थकता का स्वरूप शिक्षा–संस्कारपूर्वक परंपरा में स्थापित होता ही रहेगा। जागृत शिक्षा–संस्कार के सम्बन्ध में स्पष्ट किया जा चुका है। जागृतिपूर्ण परंपरा अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व विधि से अनुप्राणित रहने के आधार पर ही जागृत मानव परंपरा का अक्षुण्णता समीचीन रहना पाया जाता है। अतएव सम्पूर्ण सम्बन्ध और उसका सम्बोधन निश्चित प्रयोजन के अर्थ में अपेक्षित रहना ही सम्बोधन का तात्पर्य है। इसमें हर व्यक्ति जागृत रहना यह प्राथमिक दायित्व है। इन्हीं दायित्वों, मौलिक अधिकारों का प्रयोजन सहज ही सफल हो पाता है। फलस्वरूप मानव परंपरा में जीने की कला विधि के रूप में प्रमाणित होता है। विधि का प्रमाण स्वयं सम्बन्ध–मूल्य–मूल्यांकन–उभयतृप्ति, मानव परिभाषा के अनुरूप हर मानव अपने मौलिक अधिकार रूपी स्वतंत्रता का प्रयोग करना, तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग–सुरक्षा करना और स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य–व्यवहार में निष्ठान्वित रहना विधि है। यही सम्पूर्ण उत्सवों का आधार होना पाया जाता है।**(अध्याय:9,पेज नंबर:270–271)**
- शिक्षा–संस्कार व्यवस्था :– मानव जाति, धर्म, कर्म, व्यवहार, दीक्षा, संस्कार – हर मानव में, से, के लिये और मानव परंपरा में, से, के लिये एक अनिवार्य अध्ययन, अवधारणा, अनुभव प्रमाण है। इसी क्रम में मानव परंपरा अपने संपूर्ण वैभव को **स्वायत्त मानव**, परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना सहज है। फलस्वरूप अखण्ड समाज में भागीदारी पूर्वक समाज मानव और सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारीपूर्वक व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होना शिक्षा–संस्कार का सार्थक प्रयोजन है।....**(अध्याय:9,पेज नंबर:279)**
- जिस समय में शिक्षा–संस्कार सम्पन्न हो जाते हैं उस समय में जागृति का प्रमाण सभा, उत्सव सभा के बीच हर पारंगत नर–नारी अपने को **स्वायत्त मानव** के रूप में सत्यापित करने, परिवार मानव के रूप में कर्तव्य और दायित्वशील होने और अखण्ड समाज–सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने में अपने निष्ठा को सत्यापित करने के रूप में उत्सव समारोह को सम्पन्न किया रहना मानव परंपरा में एक आवश्यकता है। **(अध्याय:9,पेज नंबर:282)**

- कर्म और व्यवहार संस्कार का सत्यापन हर मानव अपने **स्वायत्तता** में निष्ठा के रूप में सत्यापित करना स्वाभाविक कार्य है। अतएव इसे व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वावलंबन के रूप में ही पहचाना जाता है। जिसका सत्यापन हर **स्वायत्त मानव** (नर–नारी) करता है। यह उत्सव का स्वरूप में एक अंग बनके रहना आवश्यक है। ऐसी शिक्षा–संस्कार सम्पन्नता का उत्सव हर ग्राम में हर वर्ष सम्पन्न होना स्वाभाविक है आवश्यकता भी है क्योंकि अग्रिम पीढ़ी के लिये यह उत्सव प्रेरणा स्रोत बनकर ही रहता है। संस्कार मर्यादा बोध कराने वाला पारंगत आचार्य ही रहेंगे।(**अध्याय:9,पेज नंबर:283**)
- स्नातक अवधि में पहुँचा हुआ सभी गाँव के स्नातकों का संयुक्त उत्सव सभा सम्पन्न होना भी आवश्यकता है। यह शिक्षण संस्था में ही समारोह रूप में सम्पन्न होना सहज है। इस उत्सव का प्रयोजन परस्पर स्नातकों का सत्यापन, श्रवण, साथ में अध्ययन अवधि में बिताये गये दिनों की स्मृति के साथ मूल्यांकित करने का शुभ अवसर समीचीन रहता है। इस अवसर के आधार पर हर एक स्नातक को अन्य स्नातक सत्यापन के आधार पर प्रामाणिकता को मूल्यांकित करने का अवसर बना रहता है। इस अवसर का सटीक प्रस्तुति और सदुपयोग उत्सव के स्वरूप में वैभवित होना  स्वाभाविक है। इन्हीं के साथ इनके सभी आचार्यों का मूल्यांकन और आशीष, आशीष का तात्पर्य स्नातक में जो **स्वायत्तता** स्थापित हुई है वह नित्य फलवती होने **स्वायत्त मानव**, समाज मानव, व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होने के आशयों को व्यक्त करने के रूप में उत्सव अपने आप में शुभ, सुन्दर, समाधानपूर्ण होना देखा जाता है। (**अध्याय: 9,पेज नंबर:283–284**)
- विवाह संस्कारोत्सव मुहूर्त में स्वाभाविक रूप में कन्या वर पक्ष के बन्धु–बांधव, मित्रों का उपस्थित रहना वांछनीय कार्य है। वधु–वर स्वाभाविक रूप में **स्वायत्त मानव** के रूप में पारंगत परिवार मानव के रूप में प्रमाणित रहने के आधार पर ही उभय अर्हता का निश्चय होना पाया जाता है। जैसे ही किसी शोभनीय स्थली में उभय पक्ष के सभी लोग एकत्रित होते हैं उसमें सभी आयु–वर्ग के लोगों का रहना स्वाभाविक है। सभा स्थल के एक ओर कन्या पक्ष के माता–पिताओं से संबंधित बन्धु–बान्धवों का होना, उन्हें क्रम से मातृ पक्ष के लोगों को माता के तरफ कतार से, पिता पक्ष के सभी लोगों को पिता के साथ कतार से बैठाया जाना शोभनीय होता है। इसी प्रकार वर पक्ष का भी कतारीकरण विधि से आसनासीन कराना होता है। इस कार्य में वधु–वर सहित उनके सभी मित्रगण भी प्रवृत्त रहते हैं। तीसरे ओर वधु का मित्रों की ओर तथा चौथे ओर वर के मित्रों का कतारीकरण विधि से आसनासीन कराया जाता है। तदोपरान्त आसनासीन वधु के माता–पिता के मध्य में रिक्त आसन पर वधु का आसीन होना उसी प्रकार वर के माता–पिता के मध्य में वर का आसीन होना सभा स्थल का शोभा सम्पन्न होती है। उसके तुरंत बाद वधु के पिता अपने आशय को व्यक्त करते हैं कि “मैं अमुक नाम वाला अपने पत्नी का नाम सहित, हम आपकी सम्पूर्ण जागृति और प्रामाणिकता सहित मेरे पुत्री अमुक नाम वाली जो यहाँ आपके सम्मुख प्रस्तुत है इनको मानवीय संस्कारों को समय–समय पर प्रस्थापित करते आया हूँ। इनका पोषण–सुरक्षा और सुशीलता को हम दोनों पति–पत्नी प्रेरक–कारक रहे हैं। हमारा विश्वास है कि मेरी पुत्री परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होने में समर्थ है। अतएव अब हम इस समारोह में अमुक नाम वाले जिनके माता–पिता का नाम सहित वर के साथ विवाह करने के लिए हम कृत संकल्पित हैं। मेरे इस संकल्प के साथ मेरे तथा मेरी पत्नी के सभी बंधुओं, मेरी पुत्री के सभी मित्रों की सम्मति है।” इसी के साथ हर्ष ध्वनियाँ सम्मत उच्चारण करता हुआ सम्पन्न होगा।(**अध्याय:9,पेज नंबर:286–287**)

- इसके उपरान्त विवाहोत्सव के मार्गदर्शक व्यक्ति के अनुसार सुखासन पर बैठे हुए वधु–वर दोनों पारी–पारी से बैठे हुए स्वयं को **स्वायत्त मानव** के रूप में होने का सत्यापन करेंगे और परिवार मानव के रूप में जीने के संकल्प को दृढ़ता से घोषित करेंगे। इसके उपरान्त

  1. दोनों अपने–अपने माता–पिता का नाम सहित व्यवस्था मानव के रूप में जीने का संकल्प लेगें।
  2. परिवार मानव के रूप में जीने का संकल्प करेंगे।
  3. दोनों बारी–बारी से कायिक–वाचिक–मानसिक, कृत कारित, अनुमोदित सभी कार्य–व्यवहार विचारों में एक दूसरे के पूरक होने का संकल्प करेंगे।
  4. परिवार तथा अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी का दायित्व कर्तव्यों को निर्वाह करने का संकल्प करेंगे।
  5. तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग–सुरक्षा करने का संकल्प करेंगे।
  6. सम्बन्ध–मूल्य–मूल्यांकन–उभयतृप्ति को प्रमाणित करने का संकल्प करेंगे।
  7. मानवीयतापूर्ण आचरण में पूर्ण निष्ठा बरतने का संकल्प करेंगे। **(अध्याय: 9,पेज नंबर:288–289)**

- शिक्षा–संस्कार का मूल्यांकन :– शिक्षा–संस्कार क्रम में **स्वायत्त मानव** लक्ष्य के अर्थ में, जो जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान मूलक विवेक और विज्ञान विधि सहित मानवीयता पूर्ण आचरण के अर्थ में शिक्षा कार्य सम्पन्न हुआ रहता है उससे विद्यार्थी अपना मूल्यांकन करेंगे। हर कक्षा में विद्यार्थी अपना मूल्यांकन स्वयं करने की परंपरा होगी। इस मूल्यांकन विधि में हर विद्यार्थी स्व निरीक्षण पूर्वक ही मूल्यांकन करना हो पाता है। इसमें किताबों की संख्या गणना गौण हो जाता है। वस्तु के रूप में कहाँ तक जानना, मानना, पहचानना परिपूर्ण हो चुका है, इसके पहले परिपूर्णता की ओर जितने भी सीढ़ियाँ कक्षावार विधि से बनी रहती है उसके अनुसार किस सीढ़ी तक जानना, मानना, पहचानना संभव हो चुका रहता है, निर्वाह करने में जिन–जिन विधाओं में, सम्बन्धों में पारंगत हुए रहते हैं इसका सत्यापन करना ही मूल्यांकन प्रणाली रहेगी।

  संस्कारों के संबंध में जाति, धर्म, कर्म, दीक्षा, विधा भी स्व–निरीक्षण पूर्वक ही विद्यार्थी अपने में, से मूल्यांकित करने की व्यवस्था बना रहेगा। जब सभी विद्यार्थी अपना–अपना मूल्यांकन लेखिक–अलेखिक विधियों से प्रस्तुत करते हैं। यह परस्पर अवगाहन करने का एक संगीतमय स्थिति बन ही जाती है। इससे परस्पर प्रेरकता और पूरकता दोनों संभव हो जाता है फलस्वरूप धारकता–वाहकता में सुगमता निर्मित होना पाया जाता है। शिक्षा का सम्पूर्ण सार्थकता **स्वायत्त मानव** के रूप में प्रमाणित होना ही है। परिवार मानव के रूप में संकल्पित होना और प्रमाणित होना ही है। हर शिक्षा, शिक्षण शाला–मंदिर संस्थाएँ अपने–आप में एक परिवार होना स्वाभाविक है। परिवार के अंगभूत रूप में ही शिक्षा कार्य सम्पादित होना ही स्वाभाविक है। इसीलिये हर शिक्षण संस्था में परिवार मानव रूप में प्रमाणित होना सभी विद्यार्थियों के लिये सहज है। इस प्रकार **स्वायत्त मानव** और परिवार मानव का प्रमाण और उसका मूल्यांकन स्वाभाविक रूप में जीवंत होना पाया जाता है।

  मानव का सम्पूर्ण वर्चस्व **स्वायत्त मानव** और परिवार मानव के रूप में मूल्यांकित हो जाता है। जो मानवीयतापूर्ण आचरण का ही प्रमाण है। दूसरा समझे हुए को समझाने की विधि में अर्थात् जीवन–ज्ञान, अस्तित्व दर्शन को

विवेक, विज्ञान, व्यवहार सूत्रों सहित समझाने की विधि से, समझा हुआ प्रमाणित होता है। इस प्रकार हर विद्यार्थी अपने में समझा हुआ को समझाकर प्रमाणित होने की व्यवस्था मानवीय शिक्षा–संस्कारों में सर्वसुलभ होता है। एक विद्यार्थी दूसरे को समझाने के उपरान्त समझाया हुआ को स्वयं ही मूल्यांकित करेगा। फलस्वरूप सभी विद्यार्थियों में पारंगत विधि होना स्पष्ट हो पाता है। तीसरे में किया हुआ को कराने की विधि से भी हर विद्यार्थी प्रमाणित होना उसका मूल्यांकन स्वयं करना मानवीय शिक्षा संस्थान में सहज रूप में रहता ही है। इसका मूलभूत **स्वायत्त मानव** परिवार मानव के रूप में कार्य–व्यवहार करता हुआ शिक्षक, आचार्य, विद्वान ही शिक्षा सहज वस्तु प्रक्रिया, प्रणाली, पद्धति, नीति का धारक–वाहक होना पाया जाता है। इसकी अक्षुण्णता बना ही रहता है। इस प्रकार शिक्षा का धारक–वाहक रूपी आचार्यों से शिक्षित होने के उपरान्त हर विद्यार्थी अपना मूल्यांकन करने की स्थिति में उभयतृप्ति का होना देखा जाता है। यथा–विद्यार्थी और आचार्यों के परस्परता में यह स्पष्ट हो जाता है। इस मूल्यांकन प्रणाली में दायित्व और कर्तव्य बोध सुदूर आगत तक स्वीकृत होना स्वाभाविक होता है। यही संस्कार का मौलिक स्वरूप है। इसी सार्वभौम आधार पर हर शिक्षित व्यक्ति मौलिक अधिकारों को स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग करने में सफल हो जाता है।**(अध्याय:10,पेज नंबर:295–298)**

- यह तथ्य पहले स्पष्ट हो चुका है कि **स्वायत्त मानव** शिक्षा–संस्कार पूर्वक विधिवत् दीक्षित होना, सर्वसुलभ होना यह जागृत मानव परंपरा का देन के रूप में विदित हो चुकी है। यही प्रधान रूप में शिक्षा–संस्कार पूर्वक सार्वभौमता को प्रमाणित करता है। यही **स्वायत्तता** को प्रमाणित करता है। इसी के साथ–साथ यह भी सर्वेक्षित तथ्य है कि हर मानव संतान में **स्वायत्तता** की आवश्यकता शैशव अवस्था से ही प्रकाशित रहता है क्योंकि हर मानव संतान न्याय का अपेक्षा रखता ही है, सही कार्य–व्यवहार करना चाहता ही है और सत्यवक्ता होने में निष्ठा प्रदर्शित करता ही है। यही बुनियादी अभीप्सा का द्योतक है। बुनियादी अभीप्सा की तुष्टि बिन्दु जागृति, प्रामाणिकता के रूप में सह–अस्तित्व रूपी परम सत्य बोध सहित प्रमाणित होना देखा गया है। सार्वभौमता (अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था) में भागीदारी से ही सही कार्य–व्यवहार करने का प्रमाण होना देखा गया है। समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व सुलभता के रूप में न्याय सुलभता के वैभव को देखा गया है। इस प्रकार शैशव अवस्था से ही जीवन सहज अभीप्सा प्रकाशित होता ही है। इसके लिये आवश्यकीय स्रोत, प्रक्रिया, प्रणाली और नीति मानव परंपरा में सुलभ होने के आधार पर ही हर मानव संतान का अभीप्सा सफलीभूत होना सहज और समीचीन है। इस प्रकार **स्वायत्त मानव**, परिवार मानव अपने परिभाषा में ही सार्वभौमता में भागीदारी का स्वरूप ही है। अतएव ऐसी भागीदारी दायित्व और कर्तव्य में परिगणित होने के कारण हर व्यक्ति भागीदार होने का अर्हता को बनाये रखता है। ऐसी भागीदारी का स्वयं स्फूर्त होना ही जागृति की महिमा है। इस प्रकार विनिमय कोष कार्य में भागीदारी के फलस्वरूप समाधान और उसकी निरंतरता का प्रमाण होना स्वाभाविक है। यही व्यवस्था में भागीदार होने का अथवा समग्र व्यवस्था में भागीदार होने का फल है अथवा वैभव है। इस विधि से भी विनिमय कोष आवर्तनशील विधि के साथ अपने को सफल बनाना सहज सिद्ध होता हैं।**(अध्याय:10,पेज नंबर:308–310)**

- शरीर को स्वस्थ रखने की कल्पना, विचार, चित्रण और मूल्यांकन लक्ष्य बोध सहज विधि से ही सुयोजित होना पाया गया है। चिन्हित रूप में शरीर की स्वस्थता जीवन जागृति की अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन योग्य विधि से उपयोगी होना ही एकमात्र लक्ष्य होना देखा गया है। यही सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज, परिवार मानव और **स्वायत्त मानव** तथा मानवीयता को परंपरा के रूप में स्पष्ट करना, प्रमाणित करना होता है। यही मानव परंपरा के धारकता का भी तात्पर्य है। मानव परंपरा मानवीयता के प्रति जागृत रहना एक स्वाभाविक क्रिया है। यह मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार पूर्वक सर्व सुलभ हो चुकी है। अतएव परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था के पाँचों आयामों में भागीदारी को निर्वाह करना ही व्यवस्था–सहज प्रमाण पूर्वक समग्र व्यवस्था में भागीदारी का स्वरूप और गति यही मानव परंपरा का स्वस्थ गति और स्थिति होने के आधार पर स्वास्थ्य–संयमता का योजना–कार्य और मूल्यांकन सुस्पष्ट हो जाता है।**(अध्याय:10,पेज नंबर:312)**
- उक्त विधि से परिवार मानव अर्थात् समझदार व **स्वायत्त मानव**, व्यवस्था मानव और समाज मानव के रूप में प्रमाणित होना ही स्वास्थ्य–संयम का लक्ष्य है। इसे विधिवत् स्थिति गति में प्रमाणित करना ही स्वास्थ्य–संयम का प्रमाण है। इसके योग्य आहार–विहार स्वाभाविक रूप में संतुलित रूप में निर्वाह कर लेना ही यथा–आवश्यकीय व्यायाम, खेल, नृत्य, गीत, संवाद, वाद्य, कलाओं का उपयोग विहार का मतलब है। इसे स्वास्थ्य–संयम अभ्यास भी कहा जा सकता है। इस अभ्यास में हर मानव भागीदार बना ही रहता है। इसमें पारंगत व्यक्ति गाँव में, मुहल्ला में होना स्वाभाविक है। हर प्रौढ़ व्यक्ति इसमें पारंगत रहता ही है। क्योंकि परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था क्रम में स्वास्थ्य–संयम कार्यक्रम निरंतर गति के रूप में प्रवाहित रहता ही है। इसमें हर व्यक्ति में जागृति का होना दिखाई पड़ता है। इसी आधार पर आहार और विहार को व्यवस्था में भागीदारी योग्य शरीर को संभालने योग्य विधि से सम्पन्न करना सहज रहता ही है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए स्वास्थ्य–संयम समिति में भागीदारी को निर्वाह करता हुआ हर व्यक्ति समिति के सम्मिलित सदस्य के रूप में मूल्यांकन को समारोह में व्यक्त करेंगे जिस समारोह में पूरा ग्रामवासी, मुहल्लावासियों का होना स्वाभाविक होता ही है। ऐसे अवसर पर सम्पूर्ण ग्राम और मुहल्लावासियाँ मूल्यांकन करने के लिये दक्ष रहते ही हैं। किया गया मूल्यांकन सार्वभौम होने की स्थिति में सबका सम्मत होना स्वाभाविक है। कोई चिन्हित व्यतिरेक रहने की स्थिति में हर प्रौढ़ व्यक्ति विधिवत् मूल्यांकन सहित सभा में अपने–अपने प्रस्ताव को प्रस्तुत करेगा। इसी विधि से समारोह के बीच अनेकानेक स्थलियों में हर्षध्वनि, प्रसन्नता, गीत, गायन, वाद्यों से संभ्रमित होना स्वाभाविक है। संभ्रमित का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में भाँति–भाँति विधि से समर्थन को प्रस्तुत करना ही है। इस प्रकार स्वास्थ्य–संयम समिति का मूल्यांकन के साथ–साथ आगामी दिनों के लिये आवश्यकीय योजनाओं को कार्य–योजनाओं को, उसमें और श्रेष्ठताओँ को संयोजित करते हुए उत्सवित होना स्वाभाविक है। इस प्रकार सम्पूर्ण मूल्यांकन कार्यकलाप वर्तमान में विश्वास के आधार पर सम्पन्न होता ही रहता है। यही नित्य उत्सव का आधार है। श्रेष्ठता के अनन्तर श्रेष्ठता सहज योजनाएँ अग्रिम क्षणों–मुहूर्त, दिनों–महिनों और वर्षों में उत्सव का आधार बनता है।

भूमि: स्वर्गताम् यातु, मनुष्यो यातु देवताम्।

धर्मो सफलताम् यातु, नित्यं यातु शुभोदयम्।। **(अध्याय:10,पेज नंबर:312–314)**

# सन्दर्भ : आवर्तनशील अर्थशास्त्र

(संस्करण: 2009)

- उक्त विधि से सह–अस्तित्व सहज रूप में ही नित्य प्रभावी होना पाया जाता है फलस्वरूप सार्वभौम शुभ परस्पर पूरक होना सहज है। समाधान का प्रमाण मानव के सर्वतोमुखी शुभ की अभिव्यक्ति में, संप्रेषणा में और प्रकाशन में सम्पन्न होने वाली फलन है। सर्वाधिक रूप में यही अभी तक देखने में मिला है कि मानव ही मानव के लिए समस्या का प्रधान कारण है। व्यक्तिवादी समुदायवादी विधि से प्रत्येक मानव समस्याओं को पालता है, पोषता है और वितरण किया करता है। परिवार मानव के रूप में प्रत्येक व्यक्ति समाधान को पालता है पोषता है और वितरित करता है, क्योंकि जो जिसके पास रहता है वह उसी को बंटन करता है। **स्वायत्त मानव** ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित हो पाता है। **स्वायत्त मानव** का तात्पर्य स्वयं स्फूर्त विधि से व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी, होने की अर्हता से है। यह प्रत्येक व्यक्ति में सह–अस्तित्व दर्शनज्ञान जीवन ज्ञान जैसी परम ज्ञान, अस्तित्व–दर्शन जैसी परम–दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण रूपी परम आचरण अध्ययन और संस्कार विधि से स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वालंबन के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है, पाया गया है। इसी विधि से परिवार मानव का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इसे अध्ययन विधि से लोकव्यापीकरण करना मानवीयतापूर्ण परंपरा का कर्तव्य और दायित्व है। इसी क्रम में आवर्तनशील अर्थव्यवस्था अवश्यंभावी है। **(अध्याय:2,पेज नंबर:29–30)**
- परिवार का तात्पर्य सीमित संख्यात्मक **स्वायत्त** नर–नारियों का न्याय पूर्वक सहवास रूप है। यह अपने आप में स्वयं स्फूर्त विधि से परस्पर संबंधों को पहचानना मूल्यों को निर्वाह करना, मूल्यांकन करना और उभय तृप्ति पाना होता है। इसी के साथ–साथ समझदार परिवारगत उत्पादन कार्य में परस्पर पूरक होना, परिवार की आवश्कता से अधिक उत्पादन करना अथवा होना होता है। यही परिवार का कार्यकलाप का प्रारंभिक स्वरूप है। संबंध, मूल्य, मूल्यांकन विधि से समाज रचना और अखंड समाज होना पाया जाता है अथवा संभावनाएं है ही। समाज रचना विधि ही व्यवस्था का आधार है। व्यवस्था का स्वरूप पांचों आयामों में यथा

  1. न्याय सुरक्षा,
  2. उत्पादन कार्य
  3. विनिमय कोष
  4. स्वास्थ्य संयम, और
  5. शिक्षा संस्कार

  कार्यकलापों के रूप में प्रमाणित हो पाता है और उसकी निरंतरता संभावित है। सभी आयामों में भागीदारी को निर्वाह करना ही समग्र व्यवस्था में भागीदारी का तात्पर्य है। ऐसी व्यवस्था सार्वभौम होने की संभावना समीचीन है जिसकी अक्षुण्णता मानव परंपरा में भावी है। ऐसी व्यवस्था को कम से कम एक गाँव से आरंभ करना और सभी आयामों में भागीदारी को निर्वाह करने योग्य अर्हता सें समूचे ग्राम वासियों को सम्पन्न करना एक आवश्यकता है। ऐसे अर्हता से सम्पन्न परिवार मानव और परिवार कम से कम 100 परिवार के सह–अस्तित्व में परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था समझदारी पूर्वक प्रमाणित हो पाता है। ऐसी परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था में ही आवर्तनशील अर्थशास्त्र चरितार्थ होना सहज संभव है।**(अध्याय:2,पेज नंबर:30–31)**

- आवर्तनशीलता वर्तुलाकार में होना समझ में आता है। आवर्तनशील अर्थशास्त्र का तात्पर्य तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग, सुरक्षा और समृद्धि के रूप में दृष्टव्य है। यह आवर्तनशील होना पाया जाता है। मन मूलत: जीवन में अविभाज्य कार्य कलाप है। जीवन शक्ति रूपी आशा, विचार, इच्छाएं, संकल्प अनुभवपूत होकर अर्थात् अनुभवमूलक विधि से शरीर के माध्ययम से प्राकृतिक ऐश्वर्य पर निपुणता कुशलतापूर्वक श्रम नियोजन कार्य को करता है। श्रम नियोजन के फलस्वरूप उपयोगिता और कलामूल्य सम्पन्न वस्तुए उत्पादित होती है। यही धन है। अनुभवपूत मन अथवा अनुभव से अनुप्राणित मन निपुणता, कुशलता, पांडित्य को शरीर के द्वारा संप्रेषित अभिव्यक्त करता है। मानव परंपरा में जीवन प्रमाणित होने के लिए मानव शरीर की अनिवार्यता समझ में आती है। इस प्रकार अर्थोपार्जन के लिए तन एक महत्वपूर्ण वस्तु है। शरीर का उपयोग करने वाला वस्तु जीवन ही है। जीवन में से मन अधिकांश शरीर को उपयोग करता है। क्रम से अनुभव, बोध, चिंतन, तुलन सम्मत विधि से मन शरीर का उपयोग करता है तभी शरीर का सदुपयोग होना प्रमाणित होता है। शरीर की सुरक्षा के लिए जीवन सदा ही शरीर को जीवंत बनाए रखता है। मानव शरीर को जीवंत बनाए रखने में मन ही प्रयोजित रहता है। प्रयोजित रहने का तात्पर्य प्रयोजनों के अर्थ में योजित रहने से है। योजित रहने का तात्पर्य पूरकता सहवास के रूप में होने से है। शरीर जीवंत रहना शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधेन्द्रियों का कार्य जीवन स्वीकृत अथवा जीवन के द्वारा दृश्यमान होने के रूप में स्पष्ट होता है। शब्द के द्वारा व्यंजित होना कर्ण यंत्र से पहचाना जाता है फलस्वरूप शब्द का अर्थ अस्तित्व में कोई न कोई वस्तु, मूल्य, स्थिति–गति पद के अर्थों में से कोई न कोई अर्थ स्वीकृत होता है, साक्षात्कार होता है। इसी प्रकार अन्य सभी इन्द्रियों में व्यंजना के साथ उसका अर्थ साक्षात्कार होना पाया जाता है। साक्षात्कार विधि जानने–मानने–पहचानने–निर्वाह के रूप में अध्ययन स्पष्ट होता है। इसे हर व्यक्ति अपने में परीक्षण कर सकता है निर्वाह करने में भी परस्पर व्यंजनापूर्वक अर्थ साक्षात्कार स्वीकृतियाँ हो पाता है। इस विधि से धन, तन द्वारा मन के लिए अर्थात् जीवन के लिए, उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनों के रूप में साक्षात्कार होता है। यही अर्थ सार्थकता है। जीवन शक्तियाँ श्रम नियोजनपूर्वक उपयोगिता मूल्य, कला मूल्य रूपी अर्थ को स्थापित करती हैं। यही वस्तु मूल्य का यथार्थ स्वरूप होने के रूप में मूल्यांकित हो जाता है। इसी आधार पर सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता के निश्चित आधारों पर जीवन में संतुष्टियाँ शरीर पुष्टि उत्पादन में वस्तुओं का नियोजन रूपी उपयोगिता विधि से उपयोगिता का मूल्यांकन और उससे होने वाली तृप्ति समग्र व्यवस्था में जीने की कला समेत वस्तुओं का नियोजन वस्तु का परम प्रयोजन के रूप में मूल्यांकित होता है। इस प्रकार जीवन शक्तियों का परावर्तन विधि से प्राकृतिक वस्तुओं में उपयोगिता व कला मूल्यों की स्थापना और उसकी उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता से तृप्ति और उसकी नित्य संभावना एक आवर्तनशील साक्ष्य है। इसे प्रत्येक मानव जीवन, शरीर और प्रकृति सहज नैसर्गिकता सहित प्रयोग कर सकता है। निरीक्षण–परीक्षण पूर्वक निष्कर्षों को सत्यापित और प्रमाणित कर सकता है। प्रत्येक मानव में तन–मन–धन रूपी अर्थ होता ही है। होना वर्तमान में, से, के लिए ही है। इनमें परस्पर पूरकता स्वयं आवर्तनशीलता का साक्ष्य है। मन से संचालित शरीर, मन और तन के संयुक्त प्रयोग से वस्तु मूल्यों का प्रकटन, पुन: वस्तु मूल्यों का शरीर के लिए उपयोगी, जीवन के लिए तृप्तिदायी होना एक आवर्तनशीलता है। यह प्रत्येक **स्वायत्त मानव** में प्रमाणित होना पाया जाता है। **स्वायत्त मानव** को स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवसाय में स्वावलंबी, व्यवहार में सामाजिक रूप में होना पाया जाता है। **स्वायत्त मानव** ही परिवार मानव का स्वरूप है। ऐसे समझदार मानव एक से अधिक मानव लक्ष्य के अर्थ में सहवास विधि से जीना ही व्यवस्था का स्वरूप है। परिवार अपने में परस्पर संबंधों को निश्चित रूप में पहचानने

मूल्यों को निर्वाह करने, मूल्यांकन पूर्वक परस्पर तृप्ति उभय तृप्ति पाने के रूप में देखा जाता है। ऐसे परिवार में अपनायी गई उत्पादन कार्य में स्वयं स्फूर्त विधि से परिवार का हर व्यक्ति पूरक होना पाया जाता है। फलत: परिवार की आवश्कता से अधिक वस्तुओं का उत्पादन हर परिवार में समीचीन रहता ही है। यह भी अर्थात् परिवार में उभयतृप्ति, उसकी निरंतरता और आवश्यकता से अधिक उत्पादन, उसका सदुपयोग और सुरक्षा, यह स्वयं में आवर्तनशील है। इससे स्पष्टतया समझ में आता है कि मानवीयतपूर्ण परिवार में आवश्यकताएं सीमित हो जाती है क्योंकि उपयोग, सुदपयोग, प्रयोजनशीलता निश्चित होता है। फलस्वरूप आवश्कता से अधिक उत्पादन हर परिवार में संभव है।**(अध्याय:3,पेज नंबर: 53–56)**

- बड़े–बड़े उद्योगों का भी स्थान अवश्य ही बना रहेगा। अधिकांश प्रौद्योगिकियाँ लघु उद्योग सीमा तक ही केन्द्रित होना रहेगा। इन सबका यथावत् संचालन कार्य भी ग्राम स्वराज्य सीमा में सर्वाधिक सम्पन्न होना जैसे–जैसे आगे की सीढ़ियाँ होंगी वैसे–वैसे इनका तादात धटने की व्यवस्था है दिखाई पड़ती है। आवर्तनशीलता क्रम में प्रत्येक सीढ़ी में जिम्मेदारियों का सूत्र या दायित्वों का सूत्र बना ही रहेगा। शिक्षण संस्थाओं में सर्वाधिक जिम्मेदारी समायी रहना स्वाभाविक है। शिक्षा संस्कार ही **स्वायत्त मानव** का स्वरूप देने में अथवा स्वरूप को स्थापित करने का सार्थक मानसिकता प्रमाण कार्यप्रणाली है। वस्तु प्रणालियाँ समाहित रहेगी। वस्तु प्रणाली का तात्पर्य जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान ही है। इसका प्रबोधन कार्य प्रणालियाँ पूरकता और आवर्तनशील विधियों से सम्पन्न होता रहेगा। यह नैसर्गिक संतुलन और पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में सार्थक होगा।**(अध्याय:3,पेज नंबर:62–63)**
- मानव का संतुलन जीवन जागृति पर आधारित है। जीवन जागृति सुलभता पीढ़ी से पीढ़ी के लिए जागृत परंपरा पर ही आधारित है। (इस बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक मानव विभिन्न रहस्यमयी अहमतावादी अस्मिता सहित संघर्ष, कुण्ठा, निराशा, भय, सशंकता, द्रोह, विद्रोह, घृणा उपेक्षा जैसी अवांछनीय प्रताड़नाओं से प्रताड़ित होता ही आया हुआ है। इसे हम सब अच्छी तरह से समझ गए हैं अथवा समझ सकते हैं। इसी के साथ जो कुछ भी संग्रह और भोग के प्रति प्रलोभन है, जिसमें क्षणिक रूप में राहत प्रतीत होते हुए भी उसके दूसरे क्षणों में राहत से अधिक भय, सशंकता व्यापता हुआ देखा गया है। इसे प्रत्येक व्यक्ति, समुदाय, समाजसेवी संस्था, राष्ट्र संस्था, धर्म संस्था और व्यापार संस्था और प्रौद्योगिकी संस्थाओं में परीक्षण निरीक्षण पूर्वक सर्वेक्षण कर सकते हैं। इसे हम भले प्रकार से समझ चुके हैं।) अतएव आवर्तनशील विधि से **स्वायत्त परिवार मानव**, परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी की नित्य संभावना वर्तमान में कार्यक्रम सहित समाधान, समृद्धि, अभय, सह– अस्तित्वपूर्ण शुभ और उसकी अक्षुण्णता को अनुभव करना, प्रमाणित करना, उत्सवित होना समीचीन है। इसके लिए दो ही बिन्दु का विशद् अध्ययन की आवश्यकता है। वह है मानव परिभाषा सहज जीने की कला, विचारशैली और अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन और सह–अस्तित्व साक्षात्कार। इसी तथ्य के साथ सम्पूर्ण मानव में संतुलन सूत्र और यह धरती का व्यवस्था में पूरक होने का सूत्र मानव परंपरा के लिए करतलगत होता है। इसी के अंगभूत यह आवर्तनशील चिंतन और शास्त्र है।**(अध्याय:3,पेज नंबर:69–70)**

- शरीर पुष्टि, स्वास्थ्य संरक्षण के रूप में प्रमाणित हो पाता है। इसके मूल में भी जीवन जागृति बनाम जागृत मन ही प्रमाण है। स्वस्थ मन का तात्पर्य भी जागृत जीवन की अविभाज्य अभिव्यक्ति संप्रेषणा क्रम में पाए जाने वाले जागृत मन से है। धन समृद्धि का तात्पर्य परिवार मानवों से गठित परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन से है। साथ ही संपूर्ण धन, मन और तन का सदुपयोग से है। इस स्वरूप में अर्थात् **स्वायत्त परिवार मानव** सहज परिवार में परिवार का अर्थ प्रयोजन और गति स्वयंस्फूर्त विधि से प्रमाणित होता ही है। फलस्वरूप परिवार मूलक स्वराज्य अपने आप स्वयंस्फूर्त विधि से स्थापित होना सहज है। (**अध्याय:3,पेज नंबर: 80**)
- पहला विचारणीय पक्ष सदा–सदा मानव तृप्त हो सकता है ? इसका उत्तर हाँ हो सकता है। इसके बाद इससे लगा पुन: प्रश्न होता है कैसे हो सकता है ? इसके उत्तर में साफ–साफ मानव ही विश्लेषण की वस्तु के रूप में दिखाई पड़ती है। हर मानव में संतुष्टि स्वीकृत है, असंतुष्टि स्वीकृत नहीं हैं। संतुष्टि पाने के लिए ही मानव परंपरा में अर्पित रहता है भले ही वह छोटा सा समुदाय क्यों न हो ? अभी तक मानव कुल विविध समुदाय में ही गण्य हो पाया है। इसीलिए हर मानव जन्म से मानव कुल में ही अर्थात् समुदाय में अर्पित होना दृष्टव्य है। मानव शरीर ही जीवन जागृति को व्यक्त करने योग्य रचना है। ऐसी शरीर रचना की परंपरा स्थापित है। हर समुदाय में भी ऐसे ही शरीर रचना होने के व्यवस्था बन चुकी है। मानव शरीर रचना में मुख्य अंग मेधस रचना ही है। मेधस रचना के साथ ही कार्यतंत्रणा और ज्ञान तंत्रणा विधि निहित है, जीवन ही इन तंत्रणा विधियों से ज्ञान तंत्रणा पूर्वक कर्म तंत्रणा सम्पन्न करता है। ज्ञान तंत्रणा को हम ज्ञानेन्द्रियों में पहचान सकते हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंधात्मक साक्ष्यों सहित प्रमाणित है। इन्हीं क्रियाओं के साथ ही मानव को जीवंत रहना प्रमाणित होता है। इन क्रियाओं के लुप्त होने के उपरान्त ही मरणासन्न या मृत हो जाता है। इसमें मुख्य तथ्य यही है मेधस से जीवन में जुड़ी हुई ज्ञान तंत्रणा जब तक बनी रहती है अथवा सम्पादित हो पाती है तब तक शरीर यात्रा की सार्थकता मूल्यांकित होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन शक्तियाँ ज्ञान तंत्रणा पूर्वक परावर्तित होते हैं। यही परावर्तन व्यवहार, उत्पादन और उपयोग क्रियाकलापों में साक्षित होता है। जीवन शक्तियों का परावर्तन क्रियाकलापों में से उत्पादन कार्य भी एक आयाम होना पाया जाता है। उत्पादन कार्य में मानसिकतापूर्वक श्रम नियोजन होना स्पष्ट है। श्रम नियोजन का आधारभूत वस्तुएं प्राकृतिक ऐश्वर्य ही है। इस प्रकार प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन का स्वरूप ही उत्पादन का स्वरूप प्रदान करता है। सभी उत्पादन में उपयोगिता मूल्य और कला मूल्य मूल्यांकित हो पाता है। ऐसी श्रम का मूल स्रोत जीवन शक्ति ही होना स्पष्ट हो चुकी है। ऐसे जीवन शक्तियां प्रत्यावर्तन में समृद्धि का अनुभव करना ही उद्देश्य है। हर मानव समृद्ध होना चाहता है। इसकी संभावना सहज है। इसका स्वरूप **स्वायत्त मानव** और परिवार मानव के रूप में क्रियान्वयन होता है। फलस्वरूप परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना सहज हो जाता है और परिवार के सभी सदस्य समाधान के साथ समृद्धि का अनुभव करते हैं। समाधान समृद्धि संतुष्टि का स्रोत है और इसकी निरंतरता होती है।(**अध्याय:4,पेज नंबर:101–103**)
- **स्वायत्त मानव** परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना सहज है। **स्वायत्त मानव का स्वरूप–स्वयं के प्रति विश्वास–श्रेष्ठता के प्रति सम्मान,–प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन और व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वावलंबन**। यह सब आवश्यकता के रूप में समीचीन रहता ही है। इसकी आपूर्ति अस्तित्वदर्शन, जीवनज्ञान पूर्वक सम्पन्न होना पाया जाता है। फलस्वरूप परिवार मानव पद आवश्यंभावी होती है। ऐसा **स्वायत्त मानव** कम से कम दस संख्या में मिलकर साथ–साथ जीने की कला को जीने देकर जीने के रूप में प्रमाणित करता है। दूसरे विधि से हर परिवार जागृत मानव सम्बन्धों को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, मूल्यांकन करते हैं और उभय तृप्ति

पाते हैं। साथ ही परिवारगत उत्पादन–कार्य में एक दूसरे के लिए पूरक होते हैं, फलस्वरूप आवश्यकता से अधिक उत्पादन प्रमाणित होता जाता है। यही समृद्धि का आधार–सूत्र है। इस प्रकार जो दस व्यक्ति रहेंगे साथ में सभी उम्र के होंगे ही, ये सब **स्वायत्ततापूर्ण, स्वयात्तशीलता** के रूप में देखने को मिलता है। **स्वायत्त मानव** का परिवार मानव होना स्वाभाविक है। क्योंकि सह–अस्तित्व में ही **स्वायत्तता** का प्रमाण होना स्वीकार्य रहता है। इसी क्रम और विधि से परिवार समूह, ग्राम, ग्राम समूह, क्षेत्र, मंडल, मंडल समूह, मुख्य राज्य, प्रधान राज्य और विश्व राज्य परिवार और व्यवस्था के रूप में स्वरूपित होना सहज है। इसकी आवश्यकता समीचीन है। परिवार को ही दूसरे भाषा में समाज कहा जाता है। मानव सम्बन्ध–बोध विधि से ही मूल्य निर्वाह और मूल्यांकन, चरित्र और नैतिकतापूर्वक सम्पन्न होना मानव में ही देखा जाता है। इसी सत्यतावश आवर्तनशील अर्थव्यवस्था स्वाभाविक रूप में सार्थक होता है। मूल्य, चरित्र और नैतिकता क्रम में सर्वमानव वैभवित होना चाहता ही है। सफल होने में अभी तक जो अड़चन थी वह केवल व्यक्तिवादी एवं समुदाय चेतना, सामुदायिक श्रेष्ठता का भ्रम। फलस्वरूप, समुदाय–वर्ग संघर्ष, प्राकृतिक देन–ईश्वरीय देन मान लेना ही रहा। अभी यह सौभाग्य समीचीन हो गया है कि मानव मानवीयता को सार्वभौम आचरण के रूप में पहचानना–निर्वाह करना, जानना और मानना सहज हो गया है। अतएव आवर्तनशील स्वरूप–कार्य और प्रयोजन को समझना और उसे प्रमाणित करना आवश्यक है ही। आवर्तनशीलता का स्वरूप मूलत: विभिन्न आयामों में, विभिन्न मूल्यों के आधार पर ही प्रयोजित होना पाया जाता है। जैसे सह–अस्तित्व में जीवन मूल्य, मानव मूल्य आवर्तित होता है। प्रामाणिकता सहज विधि से जीवन मूल्य सफल होता हुआ देखा गया है। सार्वभाम व्यवस्था क्रम में मानव मूल्य सहज सार्थक होना स्पष्ट है और अखण्ड समाज में भागीदारी स्वयं समाज मूल्य यथा स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य, उपयोगिता मूल्य, कला मूल्य आवर्तनशील होना पाया जाता है। इसमें से उत्पादनपूर्वक यथा निपुणता, कुशलतापूर्ण जीवन शक्तियों को हस्त लाघव सहित (शरीर के द्वारा) प्राकृतिक ऐश्वर्य पर स्थापित करने की क्रियाकलाप को उत्पादन कार्य नाम है। यह प्रसिद्ध है। सबको विदित है। ऐसे उत्पादित वस्तुओं को दूसरे से उत्पादित किया गया वस्तु को पाने के क्रम में हस्तांतरित कर लेना अर्थात् लेन–देन कर लेना मानव कुल में एक आवश्यकता है। यही मूलत: विनिमय के नाम से जाना जाता है। ऐसे विनिमय कार्य उत्पादन के लिए जो कुछ भी शक्तियों का नियोजन कर पाए वही वस्तुओं में उपयोगिता और कला मूल्य के रूप में पहचानने में आती है। **(अध्याय:4,पेज नंबर:135–137)**

- उपयोगिता और कला मूल्य का मूल्यांकन होना सहज है। इसी मूल्यांकन क्रिया को श्रम मूल्य का नाम दिया। उत्पादन क्रम में अनेक वस्तुएं होना पाया जाता है। यह महत्वाकांक्षा और सामान्य आकांक्षा के रूप में वर्गीकृत है। इनमें से सामान्य आकांक्षा सम्बन्धी किसी वस्तु का उसमें भी किसी एक आहार वस्तु का मूल्यांकन सर्वप्रथम करना आवश्यक है। इस क्रिया को इस प्रकार किया जा सकता है कि जैसे गेहूँ को एक गाँव में कई परिस्थितियों में बोया जाता है। उत्पादन भी विभिन्न तादादों में होता है। उसका सामान्यीकरण उत्पादन तादातों के मध्य बिन्दु में सामान्य मूल्य रूप होना सहज है। जब एक वस्तु का उपयोगिता व कला मूल्य का मूल्यांकन हो जाता है, उसी प्रकार गाँव में उत्पादित हर वस्तु का मूल्यांकन हर **स्वायत्त मानव** से सम्पन्न होना स्वाभाविक है। ऐसे **स्वायत्त मानव** ही परिवार मानव और विश्व परिवार मानव तक अपने वर्चस्व को अथवा अपने वैभव को प्रमाणित करना संभव होने के कारण परिवार समूह, ग्राम परिवार तक एक गाँव में ही मूल्यांकन क्रिया का ध्रुवीकरण हो पाता है। फलस्वरूप ग्राम में उत्पादित वस्तुओं का विनिमय गाँव में होने में कोई अड़चन नहीं रह जाती है। परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का प्रमाण कम से कम एक गाँव से ही होना संभव है। इसीलिए परिवार मूलक विधि से ही यह

सफल होना एक निश्चित विधि है। परिवार सफलता के लिए अर्थात् **परिवार स्वायत्तता** के लिए **स्वायत्त मानव** का स्वरूप, उसकी सार्वभौमता अनिवार्य है। **स्वायत्त मानव** का स्वरूप प्रदान करने का प्रेरक तत्व ही मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार परंपरा है। मानवीयता पूर्ण शिक्षा–संस्कार परम्परा का मूल वस्तु अथवा सम्पूर्ण वस्तु जीवन–ज्ञान, अस्तित्व दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण ही है। आज की स्थिति में भय और आस्था दोनों प्रलोभन के चक्कर में आकर अस्वीकृत होते जा रहे हैं। प्रलोभन की आपूर्ति का स्रोत और संभावना दोनों न होने के कारण, दूसरा उसकी तृप्ति बिन्दु न होने के कारण पागलपन छा जाना आवश्यंभावी रही है। अतएव इससे मुक्ति पाने के लिए कुछ लोग इच्छा रखते हैं। अधिकांश लोग निराशा, कुण्ठा ग्रसित हो चुके हैं। ऐसी स्थिति में हर मोड़–मुद्दे में विकल्प की आवश्यकता है ही। यहाँ की प्रासंगिकता आवर्तनशील अर्थशास्त्र और कार्यक्रम से यह सारी परेशानियाँ दूर होकर स्वस्थ अर्थात् समाधानित, समृद्ध, अभय, सह–अस्तित्वशील परिवार को साकार कर लेना संभव हो गया है। **(अध्याय:4,पेज नंबर:137–138)**

- विज्ञान विशेषज्ञता से ग्रसित है। सम्पूर्णता के साथ कुछ जिम्मेदारियाँ अनदेखी अथवा नासमझी रह जाती है फलस्वरूप कीट मार कार्यक्रम कृषि का एक अंग होना पाया जाता है। वह सम्पूर्णता से जुड़ी हुई होती ही है। विशेषज्ञता के आधार पर यह बात गले से उतरती नहीं है। अतएव विशेषज्ञता से जुड़ी हुई अधिकांश छोर सह–अस्तित्व विरोधी होना पाया जाता है। हर विशेषज्ञ यह मानकर ही चलता है कि अनेक पुर्जों से एक इकाई की रचना है। इस तथ्य को पदार्थावस्था से बनी हुई यंत्रों में प्रमाणित किया गया। इसी तर्क को प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था में प्रमाणित करने के लिए अनेकानेक अनुसंधान कार्य बीजानुषंगीय और वंशानुषंगीय सिद्धांत के आधार पर सम्पन्न होते आये। बीजानुगत वनस्पति संसार दृष्टव्य है। वंशानुगत विधि से जीव शरीर और मानव शरीर की रचना होना देखा जाता है। यहाँ मुख्य तत्व प्राणावस्था की रचना, बीजानुषंगीय विधि को लेकर विश्लेषण और निष्कर्ष निकालने का आशय है। इसी क्रम में विशेषज्ञता अन्न, वनस्पतियों के विपुलीकरण और पुष्टिवर्धन विधियों को अनुसंधान करने की कार्यक्रमों को सम्पन्न करते आये। इस क्रियाकलाप के मूल में व्यापार मानसिकता प्रधान रही। इस व्यापार विधि से बीज गुणन कार्यों के लिए रासायनिक उर्वरकता और कीटनाशक द्रव्यों मानव और जीव शरीरों के लिए प्रतिकूल को वनस्पतियों में संग्रहण करने के लिए प्रस्तुत करना एक आवश्यकता बनी। इन्हीं द्रव्यों के चलते तादात बढ़ी। जबकि घोषणाएं बीजगुणन की रही है जो बीजों में गुण रहती है। उसको विपुल बनाने के लिए सारे आश्वासन और प्रक्रिया को स्थापित किया गया। इस मुद्दे पर पूर्णतया विफल होने के उपरान्त भी बीजगुणन का नारा रसायन खाद का भरमार उत्पादन, इन रासायनिक खादों से धरती का अम्लीय और क्षारीय उन्माद को बढ़ाने का कारण तत्व को स्वीकारने के बावजूद भी अनेक उर्वरक कारखाने स्वचालित विधि से प्रक्रिया कराने के लिए तत्पर हो गये। मानव में लाभोन्माद होने के कारण विनाशकारी अनिष्टकारी कार्यों को छोड़ना बन नहीं पा रहा है। इस व्यापारिक अर्थात् लाभोन्मादी विधि से स्थापित यंत्रीकरण विधि भी व्यापार आधारित रहा। इस प्रकार कृषि के सभी ओर व्यापारीक मानसिकताएं इस त्रासदी का आधार बन चुका है।

ऊपर कहे गये अत्याधुनिक प्रणालियों से किये जाने वाले सभी कृषि कार्य पराधीनता के साथ जुड़ चुकी है। यथा बीज, खाद, जोत, गहाई, मिसाई, बोआई, इन सभी विधाओं में **स्वायत्तता** के स्थान पर पराधीनता ही स्थापित हुई। जबकि कृषि, गोपालन, कुटीर उद्योग, ग्राम शिल्प, ग्रामोद्योग में **स्वायत्तता** प्रधान तत्व है। जागृत मानव प्रकृति सहज स्वतंत्रता और स्वराज्य **स्वायत्तता** विधि से ही प्रमाणित हुए है, यहाँ तक यहीं देखने में मिलता है, जीवन ज्ञान रूपी विद्या, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान एवं मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान से मानव **स्वायत्त** हो जाता है।

फलतः परिवार मानव होना सहज है, तभी वैर विहीन परिवार मानव विधा से विश्व परिवार मानव विधाओं तक स्वयं एक व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने योग्य होता है। यह सभी वैभव **स्वायत्त मानव** होने का ही संप्रभुता और उसकी अक्षुण्णता है। **स्वायत्त मानव की पहली सीढ़ी स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, दूसरे सीढ़ी में प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, तीसरी सीढ़ी में व्यवहार में सामाजिक व्यवसाय में स्वावलंबी होने योग्य अपने में समृद्धि को पा लेना ही स्वायत्त मानव का स्थिति रूप है। जो स्वयं में ज्ञान, विज्ञान दर्शन और तर्क संगत विधि से सम्पन्न होना और मानवीयतापूर्ण आचरण में दृढ़ रहना ही स्वायत्त मानव का स्थिति रूप है।** ऐसे प्रत्येक मानव ही परिवार मानव के रूप में परिवार की परिभाषा को चरितार्थ रूप दे पाता है। मानव परिवार की परिभाषा और व्याख्या इस प्रकार होना देखा गया है कि कम से कम 10 व्यक्ति परस्परता में सम्बन्धों को पहचानते हैं, स्थापित और शिष्ट मूल्यों को निर्वाह करते हैं, मूल्यांकन करते हैं और उभयतृप्ति पाते हैं। इसी के साथ परिवारगत उत्पादन कार्य में एक दूसरे के पूरक हो पाते हैं। फलतः परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर लेते हैं। इस प्रकार समाधान और समृद्धि का स्रोत परिवार से प्रचलित होना संभव हो जाता है। **(अध्याय:5,पेज नंबर:148–151)**

- इसके तृप्ति स्थली को हर मानव इस प्रकार देख सकता है और जी सकता है कि स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवसाय (उत्पादन) में स्वावलंबी, व्यवहार में सामाजिक होने के उपरांत व्यक्ति **स्वायत्त** होता है और परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होता है। यही वांछित, आवश्यकीय, सार्वभौम मानव का स्वरूप और गति स्पष्ट हो जाती है। परिवार मानव में राग–द्वेष का पूर्णतया उन्मूलन हो जाता है। समझदारी का स्त्रोत मानवीयता पूर्ण शिक्षा–संस्कार ही है। जागृति के अनन्तर भ्रम का प्रभाव निष्प्रभावी होना स्वाभाविक है। भ्रमवश ही राग द्वेष से मानव पीड़ित रहता है। इस बात का सम्मति प्राचीन काल से भी स्वीकृत है। भ्रम निवारण की अथवा जागृति के लिए मार्ग प्रशस्त न होने के फलस्वरूप निषेधनी को बताकर ज्ञान होने की आशा बंधाए रखे थे। ऐसी आशा के अनुरूप घटनाएँ घटित नहीं हो पाई, क्योंकि जागृति की आवश्यकता रही। **(अध्याय:5,पेज नंबर:181)**
- मानवीय शिक्षा–संस्कार से **स्वायत्त मानव**, **स्वायत्त मानवों** से **स्वायत्त परिवार**, **स्वायत्त परिवार व्यवस्था** से **स्वायत्त ग्राम परिवार व्यवस्था**, ग्राम समूह परिवार व्यवस्था क्रम में विश्व परिवार व्यवस्था को पाना सहज है। मानवीयतापूर्ण शिक्षा की संपूर्णता अपने आप में जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान ही है। अपने आप का तात्पर्य मानव अपना ही निरीक्षण–परीक्षणपूर्वक ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, आचरण सम्पन्न होने से है। दूसरी विधि से अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व में परमाणु में विकास, गठनपूर्णता, जीवनी क्रम, जीवन का कार्यकलाप, जीवन जागृति क्रम, जीवन जागृति, क्रियापूर्णता उसकी निरंतरता और प्रामाणिकता (जागृति पूर्णता) उसकी निरंतरता दृष्टापद से है। इस प्रकार मानवीय शिक्षा का तथ्य अथ से इति तक समझ में आता है। इसी समझदारी के आधार पर हर मानव अपने में परीक्षण, निरीक्षण करने में समर्थ होता है। फलस्वरूप **स्वायत्त** परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक हम अच्छी तरह से सार्वभौमता, अक्षुण्णता को अनुभव कर सकते हैं। इस विधि से सेवा, व्यवस्था के अंगभूत कर्तव्य के रूप में, व्यवस्था दायित्व के रूप में, उत्पादन आवश्यकता, उपयोगिता, सदुपयोगिता के रूप में, परिवार व्यवहार सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन अर्पण, समर्पण और उभयतृप्ति के रूप में वर्तमान होना पाया जाता है। यह अधिकांश मानव में अपेक्षा भी है। इसी विधि से

धरती की संपदा संतुलन विधि से सदुपयोग होना स्वाभाविक है, अर्थ का सदुपयोग होना ही आवर्तनशीलता है। **(अध्याय:5,पेज नंबर:190–191)**

- मानवीयतापूर्ण विधि से **स्वायत्त मानव** अपने स्वरूप में ही सद्व्ययता और उसके प्रमाणों का धारक–वाहक होना बनता है। इसका मूल तत्व स्वयं पर विश्वास होना ही देखा गया है। स्वयं पर विश्वास होने के मूल में जीवन ज्ञान और अस्तित्व दर्शन ही आधार बिन्दु के रूप में दो ध्रुव स्पष्ट हो जाते हैं क्योंकि अस्तित्व ही स्थिरता के रूप में परमाणु में विकास और जागृति निश्चित है। इसमें अर्थात् मानवीयतापूर्ण विधि में मानव का वर्चस्व अर्थात् गरिमा–महिमा का स्रोत जागृति ही है। जागृति का प्रमाण अस्तित्व में प्रत्येक–एक व्यवस्था के रूप में कार्यरत रहने और समग्र व्यवस्था में भागीदारी सूत्र में सूत्रित रहने की सत्य में जानना–मानना–पहचानना–निर्वाह करना ही है। अस्तित्व में इस तथ्य के प्रति तभी संभव होना पाया गया कि जीवन ज्ञान स्पष्टतया हमें अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित होने के रूप में देखा गया। इस प्रकार जागृति का तात्पर्य सह–अस्तित्व में अनुभव मूलक मानसिकता भी होना स्पष्ट है। जबकि अनुभव मूलक विधि से यह स्पष्ट है कि जीवन का मूल बलों का नाम आत्मा, बुद्धि, चित्त, वृत्ति और मन है। इनका स्थिति कार्य रूप अनुभव, प्रमाण, बोध, चिन्तन, तुलन और आस्वादन क्रियाएं हैं। यह प्रत्येक मानव में प्रमाणित होने का स्रोत और व्यवस्था है। यही तथ्य मानव अपने में जागृति को आंकलित करने का स्रोत जागृत मानव परंपरा ही है। यही अनुभव सम्मुच्चयका भी स्वरूप है। मन वृत्ति का; वृत्ति चित्त का, चित्त बुद्धि का, बुद्धि आत्मा का अनुभव करता है। क्योंकि हर आस्वादन तुलन के कसौटी में, हर तुलन चिन्तन (साक्षात्कार) के कसौटी में, संपूर्ण साक्षात्कार बोध के कसौटी में, समग्र बोध अनुभव के कसौटी में, संपूर्ण अनुभव अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व के कसौटी में संतुलित, नियंत्रित होने की जीवन सहज कार्यकलाप को देखा जाता है। यही प्रत्येक व्यक्ति में स्वनियंत्रण का और संतुलन का सूत्र है। **(अध्याय:5,पेज नंबर:197–199)**
- प्रत्येक व्यक्ति जीवन्ततापूर्वक ही अपने को प्रमाणित करना चाहता है। प्रमाणित करने का संपूर्ण स्वरूप समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, और भागीदारी (कारीगिरी) ही है। कारीगिरी का स्वरूप व्यवहार–व्यवसाय (उत्पादन कार्य) और विनिमय के रूप में दृष्टव्य है। इसमें से व्यवहार कार्य 'मानव जाति एक– कर्म अनेक; मानव धर्म एक मत अनेक; धरती एक–मानव कृत सीमाएं अनेक; ईश्वर (सत्ता–व्यापक) एक देवताएं (जागृतिपूर्ण जीवन) अनेक; होने, नित्य वर्तमान होने के आधारों और स्वीकृतियों के साथ मानव में, से, के लिए किये जाने वाले सम्पूर्ण (कायिक, वाचिक, मानसिक व कृत, कारित, अनुमोदित) व्यवहार मानवीयतापूर्ण होना पाया जाता है। यहाँ उल्लेखनीय बात यही है हर **स्वायत्त मानव** परिवार मानव होने, हर परिवार मानव समाधान, समृद्धि का धारक वाहक होता है। दूसरे विधि से हर परिवार मानव व्यवस्था में भागीदार होने के प्रमाण (समाधान–समृद्धि) को प्रमाणित करता है। फलस्वरूप तन, मन, धन रूपी अर्थ के सदुपयोग और सुरक्षा का सूत्र अपने आप मानवीयता पूर्ण परिवार में प्रमाणित होता है। मानवीयता पूर्ण परिवार में भागीदारी को निर्वाह करना ही परिवार मानव का वैभव और प्रमाण है। यहाँ यह भी स्मरणीय तथ्य है कि प्रत्येक परंपराएं अपने स्वरूप में "मौलिक" हैं। अवस्थाओं के आधार पर ही परंपरा को पहचाना जाता है। **(अध्याय:6,पेज नंबर:202–205)**
- सार्वभौम व्यवस्था में, अखण्ड समाज में, मानवीयतापूर्ण परिवार में स्वयं **स्वायत्तता** के रूप में, अनुभव बल, विचार शैली, जीने की कला ही स्वयं पुनः अनुभव बल के रूप में प्रयोजित होना अर्थात् सुख, शांति, संतोष, आनंद का स्रोत होना पाया जाता है। प्रत्येक **स्वायत्त व्यक्ति** में अनुभव और उसकी निरंतरता नित्य रस है। इस का तात्पर्य आनन्द रस ही है। अनुभव बल का धारक वाहकता प्रत्येक मानव में आवश्यकता ही है। इसके आपूर्ति–

संपूर्ति जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान विधि से समीचीन है। सम्पूर्ति का तात्पर्य क्रियापूर्णता, आचरणपूर्णता के अर्थ में प्रमाणित होने के रूप में है। प्रमाणित होने का स्वरूप अनुभव बल, विचार शैली, जीने की कला का अविभाज्यता है। आपूर्ति का तात्पर्य आवश्यकता के अनुसार समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व का प्रमाण हर मानव के लिए सहज, सुलभ रहने से है। यह परंपरा में भागीदारी के अर्थ में सार्थक बनाता है। परंपरा कम से कम परिवार से है। **स्वायत्त मानव** ही परिवार मानव होना पहले से स्पष्ट है। प्रत्येक **स्वायत्त मानव** में स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, व्यवसाय में स्वावलंबन, व्यवहार में सामाजिक अर्थात् अखण्ड समाज में भागीदारी सहज ज्ञान, दर्शन, आचरण, विवेक और विज्ञान सम्पन्नता से है। ज्ञान, दर्शन, जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन के रूप में स्पष्ट हो चुका है। विवेक का तात्पर्य जीवन का अमरत्व, शरीर का नश्वरत्व और व्यवहार के नियमों के प्रति पूर्ण जागृति फलतः स्वीकृति और संकल्प, दृढ़ता उसकी निरंतरता का स्वरूप है। व्यवहार के नियम, मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में स्पष्ट हो चुका है जो मूल्य, चरित्र, नैतिकता का अविभाज्य कार्यकलाप है। यह भी आवर्तनशीलता का ही स्वरूप है। चरित्र का पोषण मूल्य, मूल्य का पोषण नैतिकता, और नैतिकता का पोषण चरित्र किया जाना हर जागृत मानव में आंकलित होती है। जागृत मानव परंपरा में मानव का जागृत होना सहज है। हर व्यक्ति जागृत होना चाहता ही है, वरता भी है; परंपरा जागृत न होने का फल ही है भ्रमित रहना। भ्रमित परंपरा में अर्पित हर मानव संतान भ्रमित होने के लिए बाध्य हो जाता है। परंपरा का कायाकल्प अर्थात् परिवर्तन और सर्वतोमुखी परिवर्तन एक अनिवार्यता है ही। इसकी सफलता जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान पर आधारित है जो अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन हैजिसके आधार पर ही मध्यस्थ दर्शन (सह–अस्तित्ववाद) स्पष्ट रूप में अध्ययनगम्य है। **(अध्याय:6,पेज नंबर:207–208)**

- जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान ही अनुभव बल का स्वरूप और स्रोत है। यही अनुभव बल, विचार शैली के रूप में संप्रेषित होते हुए देखा जाता है। ऐसे स्थिति में विज्ञान सम्मत विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान विधि से विचार शैली का स्वरूप होना पाया गया। ऐसी विचार शैली स्वयं में मध्यस्थ दर्शन सूत्रों से एवम् सह–अस्तित्ववादी सूत्रों से सूत्रित होना स्वाभाविक रहा। यही सह–अस्तित्ववाद, समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद और अनुभवात्मक अध्यात्मवाद के रूप में प्रस्तुत है। यही विचार शैली पुनः शास्त्रों के रूप में संप्रेषित हुई है। इसमें से आवर्तनशील अर्थचिन्तन शास्त्र और व्यवस्था का मूल स्वरूप इस प्रबंध के द्वारा मानव कुल के लिए अर्पित है। इसी के साथ–साथ व्यवहारवादी समाजशास्त्र जो स्वयं में मानवीयतापूर्ण आचार संहिता रूपी संविधान सूत्र और व्याख्या है तथा मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान मानव कुल के विचारार्थ प्रस्तुत है। भ्रमित मानव भी शुभ चाहता है। शुभ का स्वरूप समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व है। यह सर्वमानव स्वीकृत है। इनके सार्वभौमता को अध्ययन विधि से सुस्पष्ट करना ही मध्यस्थ दर्शन (अनुभव बल), विचारशैली और शास्त्र (जीने की कला) का उद्देश्य है। अतएव आवर्तनशील अर्थचिन्तन का आधार सह–अस्तित्व तथा सहअस्तित्व में मानव में अनुभव सहज जीना ही है। अस्तित्व ही स्वयं सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति के रूप में सह–अस्तित्व होना देखा गया है। यही अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन का ध्रुव बिन्दु है। अस्तित्व नित्य वर्तमानता के रूप में स्थिर होना नित्य प्रमाण है। अस्तित्व ही सह–अस्तित्व नित्य प्रमाण होने के आधार पर परमाणु में विकास, गठनपूर्णता–जीवनपद फलतः परिणाम का अमरत्व ज्ञात होता है। जीवन ही जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम में गुजरता हुआ जागृत पद में क्रियापूर्णता, जिसका प्रमाण में मानव, **स्वायत्त मानव,** परिवार मानव, व्यवस्था मानव के रूप में स्वयं में व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण उसमें पारंगत विधिपूर्ण शिक्षा–संस्कार, परिवार मूलक स्वराज्य

व्यवस्था और मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान का अध्ययन सहज है। इसी के साथ–साथ सह–अस्तित्व में संपूर्ण जड़–प्रकृति अर्थात् रासायनिक–भौतिक रचना–विरचना का अध्ययन स्वाभाविक रूप में समाहित है। जिसमें सम्पूर्ण भौतिक वस्तुओं को तात्विक, मिश्रण और यौगिक रूप में अध्ययन करना सहज हो चुका है और रासायनिक द्रव्यों में, से, प्राणकोषा, और प्राणावस्था का रचनासूत्र (प्राणसूत्र) जीव शरीर और मानव शरीर रचना सूत्र क्रम में विकसित होकर इस धरती पर चारों अवस्थाओं में परंपरा के रूप में स्थापित रहना पाया गया। सह–अस्तित्व नित्य प्रभावी होने के आधार पर जड़–चैतन्य प्रकृति में सह–अस्तित्व सहज रूप में वर्तमान है। संपूर्ण सम्बन्धों का सूत्र भी सह–अस्तित्व ही है। जीवन और शरीर का संबंध भी निश्चित अर्थ और प्रमाण सहित ही वर्तमान हैं। जीव शरीरों के साथ जीवन का संबंध वंशानुषंगीय विधियों से कार्य करने के रूप में प्रमाणित है मानव शरीर और जीवन का संबंध संस्कारानुषंगीय विधि से सार्थक और प्रमाणित होना पाया जाता है। संस्कार का तात्पर्य ही है स्वीकृतिपूर्वक (अवधारणापूर्वक) प्रवर्तनशील होने से अथवा प्रवर्तित होने से है। यही मानवीय संस्कृति–सभ्यता–विधि–व्यवस्था के रूप में सहज अभिव्यक्ति–संप्रेषणा–प्रकाशन है। (**अध्याय:6,पेज नंबर:** 208–210)

- जागृत मानव परंपरा में अध्ययन पूर्वक शिक्षा संस्कार–होना देखा गया। जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान विधिवत् अध्ययनपूर्वक बोधगम्य होना हो पाता है। इसको अभिव्यक्ति, संप्रेषणा क्रम में प्रामाणिकता और प्रमाण होना पाया जाता है। इसी विधि से यह सुस्पष्ट है कि उक्त परम ज्ञान–परम दर्शन के आधार पर सह–अस्तित्ववादी विचार शैली, शास्त्र बोध होना और साक्षात्कार होना स्वाभाविक है। बोध और साक्षात्कार के क्रम में नित्य आचरण पूर्वक पुष्टि, अनुभवमूलक प्रणाली से नित्य स्रोत बनाए रखना, इसे प्रत्येक मानव अनुभव कर सकता है। मानव अपने में सुखी होने के क्रम में सर्वतोमुखी समाधान की आवश्यकता और अनिवार्यता स्पष्ट हो जाती है। यही सह–अस्तित्वपूर्वक सुखी होने का रास्ता है। इस क्रम में मानव में **स्वायत्तता** परिवार और विश्व परिवार में प्रमाणित हो पाता है। इसी विधि से समाज रचना और परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था अविभाज्य रूप में प्रमाणित होता है। (**अध्याय:7,पेज नंबर:**212–213)
- सृष्टि जड़ एवं चैतन्य दो अवस्थाओं में है। जड़ अपने 'त्व' सहित व्यवस्था के रूप में है। जिसका दृष्टा मानव है किन्तु चैतन्य सृष्टि में मानव इकाई के स्वतंत्र (**स्वायत्त**) होने की व्यवस्था है। यहाँ स्वतन्त्रता का अर्थ सबसे अलग होने से नहीं है, फिर स्वतन्त्रता का क्या अर्थ है? स्वतन्त्रता का अर्थ है, अपने को सह–अस्तित्व सहज व्यवस्था में संगीतमय रूप में प्रमाणित करना। मानव इकाई में इसकी पूर्ण संभावनाएं हैं तथा जागृत मानव ने स्वतन्त्रता की अनुभूति भी की है।

  जड़ प्रकृति के साथ नियम पूर्वक उत्पादन, समाज में न्याय पूर्वक व्यवहार, स्वयं में समाधानपूर्ण विचार एवं सत्ता में अनुभवपूर्ण क्षमता से सम्पन्न होना ही स्वतन्त्रता का आद्यांत लक्षण है। (**अध्याय:7,पेज नंबर:**217)
- मानव का वैभव अथवा परम वैभव सह–अस्तित्व में अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित करना ही कर्म स्वतंत्रता का तृप्ति है। यही जीवन जागृति का भी प्रमाण है। इसी का वैभव स्वाभाविक रूप में ही परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और उसकी निरंतरता परम्परा के रूप में चरितार्थ होना पाया जाता है। ऐसी परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी केवल परिवार मानव सहज अधिकार स्वत्व, स्वतंत्रता के आधार पर वैभव (व्यवस्था) प्रमाणित होता है। तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग–सुरक्षा परिवार मानव विधि से चरितार्थ हो पाता है। चरितार्थता का तात्पर्य मानवीयतापूर्ण चरित्र में ही नैतिकता अर्थात् तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग–सुरक्षात्मक नीति का

व्यवहारीकरण पूर्वक प्रमाणित होता है। व्यवहारीकरण स्वरूप को इस प्रकार समझा गया है कि हर व्यक्ति में तन, मन, धन रूपी अर्थ होता ही है। तन और मन के संयोग मानव में नित्य वर्तमान और प्रमाण है। आशा, विचार, इच्छा सहित ही हर प्रकार के कार्य–व्यवहार करता हुआ देखने को मिलता है। ऐसे कार्य–व्यवहार क्रम में ही चरित्र अपने–आप में स्पष्ट होता है। मानवीयता पूर्ण चरित्र स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष दयापूर्ण कार्य–व्यवहार होना स्पष्ट किया जा चुका है। दयापूर्ण कार्य–व्यवहार में ही तन, मन, धन का सदुपयोग होना मूल्यांकित होता है। दया की मूल प्रक्रिया ही है जीने देकर जीना। जागृत मानव जीने देकर जीने में प्रमाणित रहता ही है। इसका सहज चरितार्थता परिवार मानव के रूप में ही सम्पन्न हो पाता है। ऐसे परिवार मानव रूपी अधिकार, स्वत्व और स्वतंत्रता का स्रोत अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन ही है। चिंतन का तात्पर्य अनुभव सहज साक्षात्कार से है। साक्षात्कार का तात्पर्य जो जैसा है उसे वैसा ही जानने–मानने–पहचानने–निर्वाह करने से ही है। जो जैसा है उसे जानने–मानने–पहचानने–निर्वाह करने का प्रमाण स्वयं व्यवस्था में जीना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने के रूप में स्पष्ट होता है। **स्वायत्त मानव** ही परिवार में व्यवस्था के रूप में जीकर प्रमाणित हो पाता है। यह परिवार व्यवस्था के रूप में ही गण्य होता है। ऐसे परिवार मानव समग्र व्यवस्था में अर्थात् विश्व परिवार व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करने योग्य हो पाते हैं। अतएव **स्वायत्त मानव** से परिवार मानव, परिवार मानव से ही व्यवस्था मानव, व्यवस्था मानव से ही समग्र व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करने का स्वत्व, स्वतंत्रता और अधिकार को स्पष्ट करता है। अधिकार का तात्पर्य अनुभव बल के रूप में दृष्टव्य है। यही मानव अधिकार है। अनुभव बल को प्रमाणित करने का कार्य ही स्वत्व के रूप में देखने को मिलता है। ऐसे अधिकार और स्वत्व के सूत्रों पर व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित होना ही स्वतंत्रता है। यही मानव कुल में संप्रभुता और प्रभुसत्ता के रूप में वैभवित होना जिसकी सार्वभौमता सर्व स्वीकार होना सहज है। इसी तथ्य के आधार पर सर्वशुभ योजना समीचीन है। सर्वशुभ सम्पन्न होने का अधिकार, स्वत्व, स्वतंत्रता हर मानव में, से, के लिए समीचीन रहना पाया जाता है। ऐसा सर्वशुभ समाधान, समृद्धि, अभय, सह अस्तित्व में अनुभव सहज प्रमाण ही है। इसे सर्वसुलभ करने के क्रम में ही हर व्यक्ति, हर परिवार प्रमाणित होने का अवसर, आवश्यकता विद्यमान है ही। इसी विधि से हम मूल्य मूलक प्रणाली से योजना और कार्यशैलियों को पाना सहज है। यही मानवीयतापूर्ण विधि से जीने की कला का स्वरूप है। **(अध्याय:7,पेज नंबर: 218–220)**

- परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था क्रम में मानव कुल संक्रमित होने के उपरांत अथवा परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को मानव कुल अपनाने के उपरांत जन प्रतिनिधि को पाने के लिए, पहचानने के लिए और प्रस्तुत होने के लिए अर्थात् जन प्रतिनिधि के प्रस्तुत होने के लिए निर्वाचन प्रक्रिया और भाग–दौड़ में धन व्यय शून्य हो जाता है। फलस्वरूप पैसे से पदाभिलाषा का सूत्र समाप्त हो जाता है। पहले से मानव, **स्वायत्त मानव** और परिवार मानव के रूप में पदस्थ रहते ही हैं। यह स्वयं स्फूर्त आकाँक्षा है ही।

  **स्वायत्त मानव** का स्वरूप, परिवार मानव का स्वरूप के सम्बन्ध में अवधारणाएँ स्पष्ट हो चुकी हैं। अतएव परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का अवधारणा इस ग्रंथ का अध्ययन करने वाले मनीषी को सुलभ हुआ रहता ही है। **(अध्याय:8,पेज नंबर:231–232)**

- इस चित्र में स्पष्ट किया गया पाँचों आयाम रेखाकार और वर्तुलाकार विधि से अन्तर सम्बन्धित और कार्यरत रहते हैं। रेखाकार विधि से अन्तर्संबंध, वर्तुलाकार विधि से पांचों समितियों को अविभाज्य सम्बन्ध आवर्तनशीलता के रूप में देखने को मिलता है। इसके मूल में मानव ही मानवीय शिक्षा–संस्कारपूर्वक **स्वायत्त मानव**, परिवार मानव (समाज मानव) और व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होना ही परिवार मूलक के स्वराज्य व्यवस्था का अबाध गति है। इस क्रम में ग्राम परिवार व्यवस्था में विनिमय कोष का कार्य का सामान्य चित्र जो उत्पादन और विनिमय सुलभ रूप को स्पष्ट करता है :– **(अध्याय:8,पेज नंबर:233–234)**

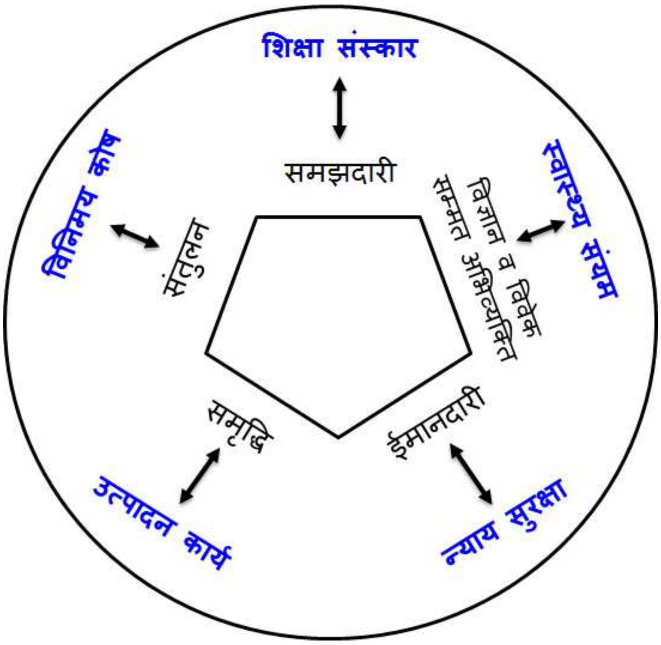


- मूल्यांकन सम्बन्धी निश्चयन हर ग्राम से आरंभ होकर विश्व परिवार विनिमय–कोष तक सम्बद्ध रहना आवश्यक है। शिक्षा पूर्वक हर व्यक्ति में निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य सुलभ होता है। फलस्वरूप उत्पादन कार्य में दक्ष होना पाया जाता है। इसी आधार पर प्रत्येक व्यक्ति में **स्वायत्तता** पूर्ण लक्ष्य अध्ययन काल से ही समाहित रहता है। सम्पूर्ण उत्पादन की कोटि और स्वरूप स्पष्ट हो चुका है। समृद्धि का सर्वाधिक आपूर्ति आहार, आवास, अलंकार सम्बन्धी वस्तुओं, उपकरणों और सामग्रियों सहित प्रत्येक ग्राम सीमा में जो कुछ भी प्राकृतिक ऐश्वर्य, जलवायु, वन, खनिज, नैसर्गिकता के रूप में रहते ही हैं। इन्हीं आधारों पर या इन्हीं के पृष्ठभूमि में मानव अपना श्रम नियोजन करने का कार्यक्रम बनाता है। हर परिवार अपने प्रतिष्ठा के अनुरूप आवश्यकताओं का निर्धारण करने में मानवीयता पूर्ण शिक्षा संस्कार के बाद ही समर्थ होना पाया जाता है। ऐसे परिवार मानवों से सम्बद्ध परिवार अपने आवश्यकता की तादात, गुणवत्ता सहित आवश्यकताओं को अनुभव करेंगे और उत्पादन–कार्य को अपनायेंगे। हर गाँव में साधारणतया कृषि, पशुपालन, ग्राम शिल्प, कुटीर उद्योग, हस्तकला, ग्रामोद्योगों को अपनाना सहज है। इसी आधार पर हर परिवार के लिए आवश्यकतानुरूप उत्पादन कार्य का अवसर समीचीन होना स्पष्ट है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट है कि सम्पूर्ण आवश्यकताएँ शरीर पोषण, संरक्षण और समाज गति में ही उपयोगी, सदुपयोगी, प्रयोजनशील है। इसी स्पष्ट नजरिये से जीवन ज्ञान सम्पन्न हर मानव को आवश्यकताएँ सीमित दिखाई पड़ती हैं और आवश्यकता के अनुरूप उत्पादन श्रम शक्ति मूलत: जीवन शक्ति की ही अक्षय महिमा होने के आधार पर आवश्यकता से अधिक उत्पादन में विश्वास स्वाभाविक है। यह **स्वायत्त मानव** में अभिव्यक्त होने वाले आयामों में

से उत्पादन–कार्य भी एक आयाम है। इस विधि से आवश्यकताएँ सीमित संयत होना पाया जाता है। इसी सूत्र के आधार पर अपने उत्पादन कार्यों को विभिन्न वस्तुओं के रूप में परिणित करने में निष्ठान्वित होते हैं।**(अध्याय:8,पेज नंबर:237–238)**

- मूल्यांकन के मूल में मानव ही प्रधान वस्तु है। प्रत्येक समझदार मानव अपने **स्वायत्तता** सहित सम्पूर्ण है। परिवार मानव के रूप में प्रमाण है। 'परिवार मानव' **स्वायत्त मानवों** का सीमित संख्या है जो परस्पर सम्बन्धों को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, मूल्यांकन करते हैं उभयतृप्ति पाते हैं और परिवार सहज आवश्यकता के अनुसार उत्पादन कार्य को अपनाए रहते हैं, ऐसे उत्पादन कार्य को सफल, सार्थक बनाने के लिए आवश्यकता से अधिक पाने के लिए सभी पूरक रहते हैं। यही परिवार व्यवहार और परिवार कार्य को स्पष्टतया प्रमाणित करते हैं। परिवार में दस समझदार का होना आवश्यक है। यही वैभव अखंड समाज अथवा विश्व परिवार के स्वरूप में भी इतना ही व्यवहार और इतने ही कार्य रूप में होना पाया जाता है। इसीलिए परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का नाम दिया है। इसी परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का अंगभूत आवर्तनशील अर्थशास्त्र को समझा गया है। इस आवर्तनशीलता क्रम में मूल्यों का मूल्यांकन करने के संबंध में स्पष्ट विश्लेषण, कार्यरूप, उसका सम्बन्ध सूत्र, उपयोगिता, सदुपयोगिता की ओर गति को पहचानने की आवश्यकता है। जिससे अखण्डता–सार्वभौमता अक्षुण्ण हो सके। **(अध्याय:8,पेज नंबर:244–245)**

# सन्दर्भ : मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

(संस्करण: 2008)

- 15. **स्वायत्त** – 16. समृद्धि (आवश्यकता से अधिक उत्पादन)

  परिभाषा :– **स्वायत्त** = समृद्धि का अनुभव ही **स्वायत्त** है।

  (अध्याय:5.1, पेज नंबर:63)

- समझदार व्यक्ति, समझदार व्यक्ति के साथ पूरक होना परिवार में चिन्हित हो जाता है प्रमाणित होता है। फलस्वरूप समाधान समृद्धि हर जागृत परिवार में प्रमाणित होता ही है। ऐसे परिवार में हर व्यक्ति उपकार अर्थात् उपाय पूर्वक उत्थान (जागृति और विकास के अर्थ में किया गया तन, मन, धन रूपी अर्थ का प्रयोग उपयोग) से है। जागृति पूर्वक अर्थ का सदुपयोग होना प्रयोजनशील होना, प्रमाणित होता है। इसी तथ्यवश समझदार परिवार में भागीदारी करने वाले उपकार कार्य में प्रवृत और कार्यरत होते है। यह समाधान समृद्धि का वैभव रूपी प्रमाण है। वैभव का तात्पर्य स्वीकारने योग्य प्रयोजन, आचरण, और समझदारी से है। इस प्रकार उपकार करने वाले होने वाले का योग, संगीत अर्थात सार्थकता के अर्थ में उभय स्वीकृति के रूप में सम्पन्न होना पाया जाता है। इस प्रकार प्रयोजनशील सार्थकवादी उपकार कार्यक्रम शिक्षा संस्कार के रूप में ही सार्थक होना पाया जाता है। हर मानव समझदारी से संपन्न होने के उपरांत ही **स्वायत्त** सम्पन्न होता गया। ऐसी **स्वायत्तता** को छः प्रकार से पहचाना गया प्रमाणों के रूप में विदित कराया जा चुका है। ऐसे समझदार मानव की पहचान पहले समझाये गये छः समाधान सहज गति के रूप में होने के आधार पर ही हर आयाम दिशा कोण के परिपेक्ष्यो में लिया गया निर्णय समाधानकारी होना स्वाभाविक है। स्वाभाविक का तात्पर्य व्यक्ति जो समझदार हुआ रहता है उनमें समाधानकारी न्यायकारी, प्रयोजनकारी निर्णय बिना दूसरे के सहायता के सम्पन्न होता है। फलतः उपकारकारी होता है। इस प्रकार समझदार परिवार में भागीदारी करने वाले सभी नर नारी उपकारकारी कार्य में प्रवर्तित होते हैं। उपकार कार्य में तीन स्वरूप को पहचाना गया है वह समझा हुआ को समझाना, किया हुआ को कराना, सीखा हुआ को सिखाना ही है। सीखा क्रिया के मूल में समझदारी ही सबल, सार्थक प्रवर्तन है। मानव का प्रवर्तन सह–अस्तित्ववादी विचार शैली के आधार पर सार्थक होना पाया गया। फलस्वरूप समझकर सीखने का सिद्धांत अपने आप सार्वभौम हो जाता है। सार्वभौमता का तात्पर्य सर्वमानव में स्वीकार होने से है। अतएव उल्लेखनीय बिन्दु यही है कि हर नर–नारी समझदारी पूर्वक ही परिवार में भागीदारी करता है। फलतः परिवार सार्थकता रूपी समाधान, समृद्धि रूपी उपकार हर समझदार परिवार में स्वस्फूर्त विधि से प्रमाणित होता है। उपकार विद्या ही मुख्य बिन्दु है। धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा का प्रमाण सर्वविदित होने और सर्वसुलभ होने का तथ्य है। धीरता वीरता पूर्वक मानव सम्पूर्ण उपकार कार्य करता है। **(अध्याय:5.21, पेज नंबर:165–166)**

- अनुभव सहज प्रकटन मानव परस्परता में पूर्ण विश्वास का स्रोत प्रभाव और प्रक्रिया है। प्रेमानुभूतिपूर्वक हर मानव अपने ही स्वयं स्फूर्त विधि से भाव भंगिमा, मुद्रा, अंगहार कार्य–व्यवहार और निश्चय तथा निरंतरता सहित प्रकट व्यक्त सार्थक होना पाया जाता है। प्रेम और अनन्यता सहज रूप में ही जागृति पूर्ण व्यक्ति में अर्थात् दया, कृपा, करुणा को हर आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्यों में सार्थक रूप में संप्रेषणापूर्वक प्रकाशित, व्यवहारित होता हुआ हर जागृत मानव सर्वाधिक उपकारी होना पाया जाता है क्योंकि वह स्वयं ही दया, कृपा, करुणा का संयुक्त स्रोत है और प्रेमानुभूति संपन्न रहता ही है। साथ ही **स्वायत्त**, स्वतंत्र, समृद्ध, समाधानित रहते हुए ही दया, कृपा, करुणा का प्रयोजन नियोजन प्रमाणित होना देखा गया है। अतएव दया, कृपा, करुणा का धारक, वाहक प्रेमी पद में प्रतिष्ठा पाना स्वाभाविक है। (**अध्याय:5.31, पेज नंबर:226**)

# सन्दर्भ: मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

(संस्करण:प्रथम, मुद्रण:2007)

- "मानव परंपरा में **स्वायत्तता** का स्वरूप स्थिति में स्वतंत्रता (स्वानुशासन) व गति में स्वराज्य है।" (अध्याय:10, पेज नंबर:217)
- जागृति पूर्ण मानसिकता ही **स्वायत्तता** है जो मानव परंपरा में ही प्रमाणित होता है। (अध्याय:12, पेज नंबर:246)
- प्रतिभा का प्रयोजन समाधान **स्वायत्तता** के अर्थ में, **स्वायत्तता** का प्रायोजन जागृत परंपरा में समझ कार्य व्यवहार, समझ में निपुणता कुशलता पांडित्य, शिक्षा संस्कार परंपरा में से जो प्राप्त रहता है उसे अन्य को समझाने, सिखाने, कराने, में विश्वास से है। (अध्याय:12, पेज नंबर:251)
- **स्वायत्तता** स्वयं स्फूर्त स्व–अनुशासन रूपी स्वत्व स्वतन्त्रता, स्वराज्य अधिकार वैभव है। (अध्याय:12, पेज नंबर:283)
- **स्वायत्तता** स्वयं–स्फूर्त विधि से परिवार व्यवस्था ग्राम व्यवस्था में भागीदारी के रूप में स्पष्ट होती है। यही जागृति सहज प्रमाण है। (अध्याय:12, पेज नंबर:283–284)

# सन्दर्भ: जीवन विद्या – एक परिचय

(संस्करण: 2010, मुद्रण: 2017)

- जब मैं अस्तित्व, जीवन और मानवीयतापूर्ण आचरण को भली प्रकार से समझा उसके तुरंत बाद ही मुझमें एक ऐसी स्थिति बनी जिसको अभी आपके सम्मुख रखने जा रहा हूँ। समझदारी के बाद अपने आप में विश्वास बना। इसके लिए कोई प्रयास या बहुत परिश्रम किया ऐसा कुछ नहीं। विश्वास को मैंने हर आयामों में जाँचना भी शुरु किया। इसी भांति श्रेष्ठता का सम्मान करना भी बन गया। श्रेष्ठता का मूल्यांकन करना बन गया फलस्वरूप सम्मान करना बनता ही है।

  जिसका हम मूल्यांकन नहीं करते उसका सम्मान कर नहीं पायेंगे। तीसरा मुद्दा ये बना जो कुछ भी हमारी समझदारी थी उसके अनुसार हमारे व्यक्तित्व को पूरा का पूरा एक सुविधाजनक विधि से हम झेलने योग्य बन गये। मुझे कहीं भी ऐसी कोई दिक्कत महसूस नहीं हुई कि प्रतिभा के अनुसार, अस्तित्व सहज, जीवन सहज विधि से मैं जी नहीं पाऊंगा। इसका नाम दिया प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन। इसमें हम सही सच्चा उतर गए। चौथी स्थिति आई व्यवहार में सामाजिक हो गया। सामाजिक होने पर तृप्ति मुझको अपने आप में मिलने लगी। सका लाभ यह हुआ हमको संसार के प्रति कोई शिकायत शेष नहीं रही। अब मैं कितना सार्थक करता हूँ इस बात की जाँच हर दम करता रहता हूँ। मैं जितने संबंधों में जीता हूँ अपने दायित्व कर्तव्यों के साथ सार्थक जीता हूँ। पाँचवी स्थिति आई समृद्धि। वैसे तो मैं परिश्रमी परिवार में पैदा हुआ, परिश्रम करना, सेवा करना हम जानते थे। किन्तु समृद्धि का मतलब हमको समझ में नहीं आता था। अब समृद्धि का मतलब समझ में आ गया। हमारे परिवार के लिए जितनी जरूरत है उससे ज्यादा हम उत्पादन कर लेते हैं इसलिए हम समृद्धि का अनुभव करते हैं। इस ढंग से बहुत सारी बढ़िया चीजें हमारे हाथ लग गयी इसका नाम दिया **स्वायत्तता**। मैं अपने में **स्वायत्त** हुआ इसलिए आप भी हो सकते हैं। जब हम **स्वायत्त** हुए तो हमारे बाद इस संसार को हम अर्पित कर सकते हैं, समझा सकते है, बोल सकते हैं, फलस्वरूप उसको एक वांगमय दस्तावेज रूप देना शुरू किया  पहला दस्तावेज हुआ – मध्यस्थ दर्शन सह–अस्तित्ववाद। मध्यस्थ दर्शन को चार भाग में ध्रुवीकृत किया। **(अध्याय:1, पेज नंबर:16–17)**

- जीवन का विश्लेषण क्रिया के आधार पर हम यह पहचान पाते हैं कि हमको किन–किन वस्तुओं की आवश्यकता है। फिर उन आवश्यकताओं को पहचान कर हम उत्पादन करते हैं और समृद्धि का अनुभव करते हैं। जैसे ही हम समृद्धि का अनुभव करते हैं वैसे ही हम व्यवस्था में जीना शुरू कर देते हैं इसलिए हमारे विद्यार्थियों को सर्वप्रथम **स्वायत्त** बनाने की जरूरत है और उसके बाद परिवार में प्रमाणित होने योग्य प्रवृत्ति और फिर समग्र व्यवस्था में जीने की आवश्यकता है। इन तीनों स्थितियों में प्रमाणित होना मानव का सौभाग्य है। ऐसा सौभाग्यशाली बनने के लिए मानव की स्वयं स्फूर्त आवश्यकता ही एकमात्र आधार है। यदि ऐसी आवश्यकता बनती है तो इस प्रस्ताव को मनोयोग पूर्वक, अध्ययन पूर्वक अपने को प्रमाणित करना सहज है। **(अध्याय:2, पेज नंबर:43)**

- यदि हमारी संप्रेषणा में अगले व्यक्ति को तात्विकता छू गई तो हमारी संप्रेषणा सार्थक है। यदि वही तत्व व्यवहार की सार्थकता को इंगीत कराता है (व्यवहार में सार्थकता है, मानव का प्रयोजन समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व इन चारों को इंगीत करा देना) और बोध कराता है तो व्यवहार ज्ञान अनुभव होता है। इसमें तात्विक ज्ञान हो गया। तात्विक ज्ञान के लिए भी तर्क चाहिए, व्यवहार ज्ञान के लिए भी तर्क चाहिए।पहली उपलब्धि यही है अपना मूल्यांकन, परिवारजनों का मूल्यांकन किस आधार पर होगा। मूल्यों के आधार पर, सम्बन्धों के आधार पर, उभयतृप्ति के आधार पर। व्यवहार में हम न्यायिक हो गए यही प्रमाणित कर सकते हैं। तब आदमी मानव हो गया। पहले मानव हुआ फिर समझदारी के आधार पर **स्वायत्त** हो गया और छ: गुण आ गए:–

  1. स्वयं में विश्वास
  2. श्रेष्ठता का सम्मान
  3. प्रतिभा में संतुलन
  4. व्यक्तित्व में संतुलन
  5. व्यवहार में सामाजिक
  6. व्यवसाय में स्वावलंबी।

  ये छह अर्हताएं जब मेरे समझ में आई तब मैं स्वयं को **स्वायत्त** अनुभव किया हूँ। वैसे ही हम परिवार में अपनी समझदारी, समृद्धि को प्रमाणित करने में समर्थ रहे। इसी सत्यतावश आपके सम्मुख प्रस्तुत हुए। हर व्यक्ति सज्जन बनना चाहता ही होगा, सज्जनता के लिए न्यूनतम अर्हता न्याय है। न्याय को जैसा मैं देखता हूँ वह संबंध, मूल्य, मूल्यांकन और उभयतृप्ति ही है। इसके बाद हमारे समझ में बात आई है कि हर व्यक्ति जन्म से ही न्याय का याचक है। सही कार्य–व्यवहार करना चाहता ही है। सत्य वक्ता होता ही है, इस आधार पर शिक्षा में क्या होना चाहिए? हर मानव संतान को सत्य बोध होना चाहिए, सही कार्य व्यवहार करने के लिए अभ्यास होना चाइए। विधि होनी चाहिए, न्याय प्रदाई क्षमता होनी चाहिए। तीनों चीजें ही शिक्षा–संस्था में हो सकती हैं और तब मानव परंपरा अपने आप बन जाती है। इससे पहले मानव परंपरा बनेगी नहीं। मानव परंपरा की शुरुआत न्याय से ही करना पड़ेगा। न्याय के लिए मुख्य मुद्दा है नैसर्गिक संबंध जो शाश्वत है एवं मानव संबंध निरंतर है। जब मानव कोई गलती करता है तब मार्गदर्शन के लिए कहाँ जाता है? हमने देखा है परिवार में कोई व्यक्ति जो न्याय को सत्यापित किया तो वो मार्गदर्शन देगा। परिवार में न हो तो गाँव में कोई होगा जो मार्गदर्शन देगा। गाँव में भी न हो तो देश धरती में कोशिश करेगा यह सहज प्रवृत्ति है। यह स्वाभाविक है कि हर मानव में नहीं न कहीं सुधार की प्रवृत्ति है। संसार में परिवर्तन चाह रहे हैं ऐसा तो गवाही हो चुकी है। क्या परिवर्तन चाहिए यह पकड़ में नहीं आता रहा, उसके लिए यह प्रस्ताव है। शिक्षा–संस्कार से ही लोकव्यापीकरण होगा। शिक्षा में भी मानवीय शिक्षा को प्रावधानित किया जाना चाहिए। हर व्यक्ति को न्यायपूर्वक जीकर प्रमाणित होने के लिए हमको समझदारी को देना ही पड़ेगा। इसके लिए शिक्षा में विज्ञान के साथ चैतन्य का भी अध्ययन कराना होगा। चैतन्य को हम समझेंगे नहीं, तो अस्तित्व हमको समझ में नहीं सकता और अस्तित्व नहीं समझेंगे तो व्यवस्था कैसे समझ में आएगी? अस्तित्व को समझने वाला जीवन (चैतन्य) ही है इसलिए चैतन्य वस्तु का भी अध्ययन शिक्षा में समावेश होना जरूरी है। **(अध्याय:3, पेज नंबर:70–72)**

- व्यवस्था में जीना शुरू करते हैं तो हमारी भागीदारी व्यवस्था में होती है। शिक्षा संस्कार में भागीदारी करते हैं तो निरंतर उपकार विधि से हम शिक्षा संस्कार सम्पन्न कर पाते हैं। शिक्षा संस्कार उपकार विधि से ही सार्थक होता है प्रतिफल विधि से सार्थक होता नहीं। प्रतिफल विधि से शिक्षा संस्कार देकर हम सत्य बोध, यथार्थता का बोध नहीं करा पाते हैं।

  मैं इस विधि से शिक्षा संस्कार सम्पन्न करता हूँ। प्रतिफल (भौतिक वस्तु) मिलने का कभी मन में खाका आया ही नहीं। समझदारी को समझाने के लिए भौतिक द्रव्य की आवश्यकता नहीं है। शिक्षा कार्यक्रम में जो अध्यापक है वह अपने में **स्वायत्त** रहने, स्वालम्बी रहने की आवश्यकता है। समझदारी से यह आता है कि जो **मानव स्वायत्त** रहेगा उसका स्वावलंबी रहना स्वाभाविक है तो आवश्यकीय वस्तुओं को निर्मित करेगा, समर्थ रहेगा, उपकार करेगा ही। हर मनुष्य में सहयोग, उपकार प्रवृत्ति रहती है। इसका सर्वेक्षण कर सकते हैं यही उपकारवादी विधि की उपज स्थली है। स्वाभाविक रूप में बचपन की सहयोगी प्रवृत्ति को सुदृढ़ करते जाएँ तो प्रौढ़ावस्था में वह उपकारी हो ही जाता है। इतना ही हमको करना है शिक्षा में ये स्त्रोत को सार्थक बनाने की आवश्यकता एवं प्रावधान चाहिए जिसे मानवीय शिक्षा ही सार्थक बनाएगा। यांत्रिक शिक्षा एवं व्यवसायी शिक्षा इसे सार्थक बनाएगा नहीं। इस ओर ध्यानकर्षण होने पर संभव है व्यवहार और व्यवस्था शिक्षा की ओर, प्रमाण शिक्षा की ओर आपकी प्रवृत्ति हो जाए। प्रमाण का आधार मनुष्य को होना है। यांत्रिक शिक्षा से, व्यवसायी शिक्षा से मानव सामाजिक होना तो बनेगा नहीं। इससे मानव के साथ अनाचार अत्याचार हो न हो किन्तु धरती के साथ अनाचार अत्याचार अवश्यंभावी है। यांत्रिक और व्यवसायक शिक्षा से यह धरती बर्बाद हुई है। अत: इसके विकल्प में मानवीय शिक्षा, व्यवहार शिक्षा, समाधान सम्पन्न शिक्षा, प्रमाण शिक्षा चाहिए। ऐसी शिक्षा के लिए मानवीयता पूर्ण आचरण को मध्य में रखा जाए। मानवीयता पूर्ण आचरण को संरक्षित करने केलिए मानव को समझदार बनाने के लिए सम्पूर्ण वांगमय तैयार किया जाए। **(अध्याय:4, पेज नंबर:93–94)**

- पहले प्रयास में जीवन विद्या योजना रही जिसमें चिंतन से प्रारंभ कर संकल्प तक

  जीवन क्रियाओं को स्पष्ट किया। जिसको संकल्प हुआ; उसके अनुसार जीने की कला के लिए स्वभाविक रूप से चित्रण होता है। अब से पहले संवेदनाओं के आधार पर जीने के लिए चित्रण होता रहा है। अब उसके स्थान पर प्रमाणिकता पूर्वक जीने की कला के लिए चित्रण होना प्रारंभ होता है। इसका स्वरूप है उपकार विधि। उपकार विधि से जब हम अपनी सामान्य आकांक्षाओं महत्वाकांक्षाओं को चित्रित करते हैं तो उस समय यही निकलता है कि हम स्वयं **स्वायत्त** रूप में समाधान समृद्धि को प्रमाणित किये रहते हैं तभी हम उपकार करने योग्य होते हैं ऐसी योग्यता को हम कहीं छुपा नहीं पाते हैं। वह स्वाभाविक रूप से उपकार के लिए नियोजित होती है। इस उपकार विधि से हमारी सामान्य आकांक्षाएं, महत्वाकांक्षाएं सीमित हो जाती है। इस सूत्र में आवर्तनशील अर्थशात्र स्वयं समाहित ही है, समीचीन है। मनुष्य उसे समझ सकता है, जागृति के बाद समझ में आता ही है। इस ढंग से आवर्तनशील अर्थ व्यवस्था के साथ (अर्थ = तन, मन, धन) हम धार्मिकता (धर्मनीति) में (व्यवहार, उत्पादन, व्यवस्था) नियोजित हो जाते हैं। शिक्षा में नियोजित करते ही हैं। इस ढंग से मनुष्य को सभी ओर नियोजित होने का अवसर बना ही रहता है और उन अवसरों को नियोजित करने की विधि स्वयंस्फूर्त आती है। **(अध्याय:4, पेज नंबर:97)**

- वस्तु मूल्य सतत एक सा बना रहता है जैसे है (उपयोगिता मूल्य)किलो तिल में जो भी मूल्य 1, वह हमेशा ही बना रहता है। इसी प्रकार औषधि,धान, गेहूं, वनस्पति में उनका मूल्य बना ही रहता है। उसे उपयोगिता मूल्य कहते हैं। इसके बाद मनुष्य जो उत्पादन करते हैं उसमें सुंदरता मूल्य जैसे कार बनाते हैं, रेल बनाते हैं उसमें कला से सुंदरता जुड़ जाती है। उपयोगिता के साथ सुविधा के अर्थ में सुंदरता जुड़ती है तो सार्थकता है। इस ढंग से हमारा विश्लेषण का स्वरूप बनता है। हम उपयोगी हो जाते हैं, सार्थक हो जाते हैं, सुंदर भी हो जाते हैं। मूल्यों के मुद्दों पर जीवन मूल्य सुख, शांति, संतोष, आनंद के नाम से जाने जाते हैं। जो जीवन की तारतम्यता का ही नाम है। मन और वृत्ति में संगीत होने पर सुख, वृत्ति और चित्त में संगीत होने पर संतोष, चित्त और बुद्धि में संगीत होने पर शक्ति एवं बुद्धि और आत्मा में संगीत होने पर आनंद नाम दिया है। यह कुल मिलाकर जीवन संगीत है। जब हम अनुभव मूलक पद्धति से जीते हैं तो जीवन संगीत सहज है, स्वाभाविक है। जीवन की सहज अपेक्षा है, जीवन की सहज उपलब्धि, सार्थकता है। आस्वादन में जब मूल्यों का सुख होने लगता है उन मूल्यों में से मानव के साथ प्रेम, विश्वास, स्नेह, कृतज्ञता, वात्सल्य, ये सब नाम दिया। सार्थकता के साथ संबंध को जब हम पहचानते हैं तो ऐसे मूल्य अपने आप जीवन में से निकलने लगते हैं। इसका उदाहरण जब माँ अपने बच्चे को पहचान लेती है तब ममता अपने आप उमड़ने लगती है इसके लिए पंचवर्षीय योजना की जरूरत नहीं पड़ती। मूल्य खोजने की या इकट्ठा करने की जरूरत नहीं है। मूल्य जीवन में भरे हैं वह सम्बन्धों को पहचानने से नियोजित होंगे। सम्बन्धों की पहचान परिवार के अर्थ में है, समाज के अर्थ में है, व्यवस्था के अर्थ में है और सहअस्तित्व के अर्थ में है यह चारों – प्रकार से संबंध का खूंटा बना ही हुआ है। हमको पारंगत होने की जरूरत है। जीतने हम पारंगत होते हैं उतने ही विशाल रूप में हम अपने को प्रमाण प्रस्तुत करने में, सार्थकता प्रस्तुत करने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार मूल्यों का आस्वादन करने लगता हैं। जीवन अपने से निष्पन्न मूल्यों का मूल्यांकन करता ही है। वस्तु मूल्य सब जगह फैला है जबकि जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य हमारे में ही है और जीवन अपने से इनका मूल्यांकन (जीवन में) करता है कितना सहज कार्य है कितना महिमापूर्ण है। इसके लिए कहीं बाहर से संयंत्र लगाने की जरूरत नहीं है। स्वयं को, स्वयं से, स्वयं के लिए ही परीक्षण की बात है। इसकी सबको जरूरत है। इसकी संभावना को सर्वसुलभ बनाने में विधि की बात आती है, नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय के मुद्दे पर ही शिक्षा संस्कार कार्य संपादित होता है। जब यह विधिवत संपादित होता है जीवन जागृत हो जाता है फलस्वरूप संबंधों को पहचानने में समर्थ हो जाता है। संबंधों को प्रयोजनों के अर्थ में पहचानता है फलस्वरूप आदमी सुखी हो जाता है। इस विधि से हम आस्वादन तक पहुँचे। फिर आता है तुलन। प्रिय, हित, लाभ विधि से तुलन जीव जानवर करते हैं मानव की तुलन विधि है न्याय, धर्म, सत्य। ये ध्रुव बिन्दु हैं इसे पकड़ने की, स्वीकारने की आवश्यकता है। जैसे ही इसे हम स्वीकारते हैं तो हमारा प्रयत्न इस दिशा में होता है। अभी तह शिक्षा, संस्कार, मूल्यांकन जो भी मानव ने किया संवेदनाओं के आधार पर किया और पूरा नहीं पड़ा इसलिए परंपरा बनी नहीं। इसलिए तुलन में से प्रिय, हित लाभ को न्याय, धर्म, सत्य में विलय करने की आवश्यकता है।

अर्थात न्यायपूर्ण प्रिय, न्याय पूर्ण हित और न्यायपूर्ण समृद्धि। न्याय दृष्टि से लाभ की जगह समृद्धि आ जाती है। न्याय पूर्वक उत्पादन से हम समृद्धि के मंजिल पर पहुँचते हैं। शोषण से हम स्वयं भी क्षतिग्रस्त होते हैं और संसार को भी क्षतिग्रस्त करते हैं। इसे सटीकता पूवक अध्ययन करने की आवश्यकता है, स्वीकारने की आवश्यकता है और इस पर दृढ़ संकल्प को स्थापित करने की आवश्यकता है इसलिए मानवीय शिक्षा की आवश्यकता है। जिससे हर बच्चा **स्वायत्त** होगा और छः गुणों सद्गुणों से पूर्ण होगा:–

1. स्वयं में विश्वास
2. श्रेष्ठता का सम्मान
3. प्रतिभा में संतुलन
4. व्यक्तित्व में संतुलन
5. व्यवहार में सामाजिक
6. व्यवसाय में स्वावलंबी

ऐसा **स्वायत्त मानव**, परिवार में अपने आप समृद्धि को प्रमाणित करेगा फलस्वरूप समाज सूत्र और व्यवस्था सूत्र अपने आप से निष्पन्न होता है। व्यवस्था और समाज का उद्गम स्थली है परिवार। इसको मैंने देखा है यह भली प्रकार से सार्थक होता है इसके बाद आता है व्यवस्था का स्वरूप। समझदारी के बाद व्यवस्था अपने आप उद्गमीत होता ही है, बहता ही है। **(अध्याय:4, पेज नंबर:97–99)**

# सन्दर्भ: विकल्प एवं अध्ययन बिन्दु

(संस्करण: 2011, मुद्रण:2016 )

- स्वायत्त मानव शब्द प्राप्त नहीं हुआ।

# मानवीय आचरण सूत्र

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2003 )

- जागृति पूर्ण जीवन मानसिकता ही **स्वायत्तता** है जो मानव परम्परा में ही प्रमाणित होता है। **(अध्याय:3, पेज नंबर: 19)**
- प्रतिभा का प्रयोजन **स्वायत्तता** के अर्थ में, **स्वायत्तता** का प्रयोजन जागृत परम्परा में समझ कार्य व्यवहार, समझ में निपुणता कुशलता पांडित्य जो प्राप्त रहता है उसे अन्य को समझाने, सिखाने, कराने में विश्वास से है। **(अध्याय:4, पेज नंबर: 26)**
- **स्वायत्तता** स्वयं स्फूर्त स्व–अनुशासन रूपी स्वतंत्रता, स्वराज्य वैभव है। **(अध्याय:10, पेज नंबर: 67)**
- **स्वायत्ता** स्व स्फूर्त विधि से परिवार व्यवस्था ग्राम व्यवस्था में भागीदारी के रूप में स्पष्ट होती है। जागृति सहज प्रमाण है। **(अध्याय: 10, पेज नंबर: 68)**

# सन्दर्भ: संवाद भाग १

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2011)

- स्वायत्त मानव शब्द प्राप्त नहीं हुआ।

# सन्दर्भ: संवाद भाग २

(संस्करण:2013)

- दस व्यक्तियों के समझदार परिवार में समाधान समृद्धि का वैभव होता है। ऐसे दस समझदार परिवार एक एक व्यक्ति को अपने में से निर्वाचित करते हैं जो परिवार समूह सभा को गठित करता है। ऐसे दसों व्यक्तियों का अधिकार समान होगा, उसका कोई एक मुखिया होगा ऐसा नहीं है। इन दसों परिवारों के जीने के पाँचों आयामों शिक्षा संस्कार कार्य, न्याय सुरक्षा कार्य, स्वास्थ्य संयम कार्य, उत्पादन कार्य, विनिमय कोष कार्य में जब भी कोई काम आया उसको पूरा करना, इनका काम रहेगा। जैसे सभी दस परिवार शिक्षा संस्कार में पारंगत है या नहीं? उसमें जो कमी है उसको पूरा करना।
  सभी दस परिवार न्याय पूर्वक जी पा रहे है या नहीं?, यदि नहीं जी पा रहे हैं तो उसको पूरा करना। सभी दस परिवार उत्पादन कार्य में प्रवीण है या नहीं?, आवश्यक उत्पादन कर पा रहे है या नहीं? इसका परिशीलन करना और उसकी कमियों को पूरा करना। सभी स्वास्थ्य को लेकर **स्वायत्त** है या नहीं? इसका परिशीलन करना और उसकी कमियों को पूरा करना। व्यवस्था के अर्थ में ही कमियों का आंकलन होता है और उसको पूरा करने के लिए प्रयास होता है। **(अध्याय:, पेज नंबर:37)**

- प्रश्न : क्या आपने प्रकृति की एक एक वस्तु के बारे में सोचा,फिर अध्ययन किया?
  उत्तर : नहीं संयम काल में प्रकृति अपने आप से जो प्रस्तुत हुई उसी का मैंने अध्ययन किया जैसे मैंने पत्थर को नहीं सोचा था।
  पत्थर स्वयं सामने आया और बिखर गया। बिखरते बिखरते **स्वायत्त** विधि से काम करता हुआ दिखा। उसको मैंने "परमाणु" नाम दिया। फिर जैसे पत्ता आया। पत्ता विघटित होते होते प्राणकोषा तक को दिखा दिया। **(अध्याय:, पेज नंबर:353)**